डॉ0 शर्मीला डाली कुदूसी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद

डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी

सहारनपुर में जन्मी श्रीमती शर्मीला डॉली कुद्दूसी की आरंभिक शिक्षा सैनिक स्कूल, नैनीताल में और माध्यमिक शिक्षा राजकीय कन्या इण्टर कालेज, फैजाबाद में। १९७७ में हाईस्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर आपने १९७९ में इण्टर, १९८२ में बी० ए० आनर्स, १९८३ में बी० डी० ए० (वाणिज्य), १९८४ में बी० एड०, १९८७ में एम० एड० करने के बाद अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से १९९० में हिन्दी में प्रथम श्रेणी में एम०ए० की उपाधि प्राप्त की। १९९५ में वहीं से एम० फिल० की भी उपाधि हिन्दी में प्राप्त करने के बाद सन् १९९९ में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पी० एच-डी० की उपाधि ससम्मान प्राप्त की। प्रतिष्ठित कुद्दूसी सूफी परंपरा में जन्मी श्रीमती डा० शर्मीला डॉली कुद्दूसी आधुनिक हिन्दी साहित्य की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की प्रातिभ अध्येता हैं।

उनके सद्यः प्रकाशित ग्रन्थों– स्वच्छन्दतावादी समीक्षा : नये आयाम और देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा–दृष्टि से उनके विशद अध्ययन की सरणियाँ उद्घाटित होती हैं।

देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि

देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि

डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

समर्पण

❀

हिन्दी साहित्य एवं भाषा चयन के
प्रेरणास्त्रोत
स्व० पिता मसरूर उलहक़ कुद्दूसी
एवं
माता श्रीमती ज़किया कुद्दूसी को
सादर समर्पित

प्रकाशकीय

स्वर्गीय डॉ० देवराज उपाध्याय ने 'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र' का प्रणयन करके हिन्दी-समीक्षा को समृद्ध किया था। एक तात्त्विक चिन्तक, विचारक और सुलेखक के रूप में उपाध्यायजी को साहित्य-जगत् में विशेष सम्मान प्राप्त था। हिन्दुस्तानी एकेडेमी, श्रीमती शर्मीला डॉली कुद्दूसी लिखित ग्रन्थ डॉ० देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि का प्रकाशन उन्हीं के उदार सहयोग से कर रही है। एकेडेमी अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ० अजब सिंह के प्रति आभार व्यक्त करती है, जिन्होंने अपनी संस्तुति प्रदान करके इस ग्रंथ को हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा प्रकाशित किये जाने में सहयोग प्रदान किया है।

विश्वास है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य-दृष्टि और स्वर्गीय डॉ० उपाध्याय के समीक्षा-सिद्धान्त के प्रति जिज्ञासा रखनेवाले अध्येताओं को इस ग्रंथ के माध्यम से उस मनीषी के साहित्य-चिन्तन का बोध होगा, जिसने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी साहित्य के भावक के रूप में ऐसी उद्‌भावनाएँ एवं स्थापनाएँ कीं, जिनसे इस काव्य-धारा का मर्म समझने में पाठकों और विशिष्ट अध्येताओं दोनों को प्रचुर सहायता मिली और आगे भी मिलती रहेगी।

महेन्द्र प्रताप
सचिव तथा कोषाध्यक्ष
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

दो शब्द

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी की पुस्तक 'डॉ० देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि' देश की महत्त्वपूर्ण साहित्यिक संस्था 'हिन्दुस्तानी एकेडमी', इलाहाबाद से प्रकाशित हो रही है। इस ग्रन्थ के निर्माण में विदुषी लेखिका ने परिश्रम से देश-विदेश की साहित्यिक कलात्मक चेतना को समेटकर एक नये चिन्तन-बोध को विश्लेषित एवं अन्वेषित किया है। यह अन्वेषण एवं विश्लेषण साहित्यिक कलात्मक चेतना के विकास में एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। इस प्रयास के लिऐ विदुषी लेखिका निश्चित ही साधुवाद की अधिकारिणी है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि इनका यह परिश्रम सर्वथा सफल होगा तथा हिन्दी साहित्यालोचन के क्षेत्र में इस पुस्तक का हार्दिक अभिनन्दन होगा। इस पुस्तक के प्रकाशन से अंग्रेजी साहित्य के उन सभी विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों को भी लाभ मिलेगा जो अंग्रेजी के विशिष्ट स्वच्छन्दतावादी कवियों की चिंतन-दृष्टि को अपनी मातृभाषा में पढ़ने एवं समझने के साधन और सुयोग से वंचित रहते हैं।

डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी ने पाश्चात्य रोमांटिक काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों को अद्यतन वैचारिकता का विषय बनाकर भारतीय एवं हिन्दी साहित्य के ज्ञान-भण्डार को और अधिक समृद्धिशाली बनाने का गौरवपूर्ण कार्य किया है।

मैं डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए यह अपेक्षा करता हूँ कि भविष्य में भी इसी प्रकार से आलोचनात्मक चिंतन-बिन्दुओं एवं नव्य वैचारिकता से हिन्दी साहित्य ज्ञान-भण्डार को और अधिक समृद्ध करने का प्रयास करेंगी।

शुभकामनाओं सहित—

(प्रोफ़ेसर एच० ए० एस० जाफ़री)
उपकुलपति
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ (उ० प्र०) भारत

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य के प्रति मेरी बचपन से ही अभिरुचि रही है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के प्रति मैं बाल्यकाल से ही समर्पित हूँ। हिन्दी साहित्य का सर्वांगीण विकास तथा ज्ञान-भण्डार की समृद्धि ही मेरी महत्त्वाकांक्षा रही है।

मैं वैयक्तिक स्वतन्त्रता की पक्षपाती हूँ। इस प्रवृत्ति ने ही मुझे हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद की ओर आकृष्ट किया।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया और स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक विशेष आयाम दिया। स्वच्छन्दतावादी अवधारणा पर आपने प्रथम पुस्तक लिखकर हिन्दी-समीक्षा-संसार को नया संदर्भ दिया। यही नहीं, पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों की चेतना को विश्लेषित कर हिन्दी साहित्य के ज्ञान-भण्डार को समृद्धिशाली बनाया। यही कारण था कि स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों में मैं डॉ० देवराज उपाध्याय की भावनाओं एवं विचारों से अत्यधिक प्रभावित हुई। डॉ० देवराज उपाध्याय की पुस्तक की भूमिका के लिए डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित लेख 'स्वच्छन्दतावाद क्या है ?' ने मुझे विशेष प्रभावित किया अतएव मैंने इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में इस लेख को उद्‌धृत किया है, क्योंकि यह लेख हिन्दी स्वच्छन्दतावादी चेतना की आत्मा है और भविष्य में इससे, आनेवाली पीढ़ी को उस चेतना को आत्मसात् करने में बल मिलेगा।

आज स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को पूर्णता में परिभाषित करना अत्यन्त कठिन-सा जान पड़ता है। किन्तु फिर भी केवल चार शब्दों में इसे 'सादा जीवन उच्च विचार' कहकर आस्था प्रकट की जा सकती है। आज स्वच्छन्दतावादी अवधारणा का स्वरूप इतना व्यापक हो चुका है कि इसे परिभाषित या अभिव्यक्त करना कठिन है।

पूर्व स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, स्वच्छन्दतावाद तथा नवस्वच्छन्दतावाद सब स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास के आयाम हैं। डॉ० नामवर सिंह क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद का उल्लेख करते हैं, किन्तु डॉ० अजब सिंह इसे नवस्वच्छन्दतावाद की एक प्रवृत्ति मानते हैं। यथार्थ के साथ जब स्वच्छन्दतावादी अवधारणा का मिलन होता है तो वह नवस्वच्छन्दतावाद के रूप में विकसित होती है; किन्तु जब आध्यात्मिक चिन्तन के साथ स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद का मिलन होता है तो उसका क्रान्तिकारी रूप सहजता को प्राप्त होता है और मेरे विचार से इसे 'सहज क्रान्तिकारी नवस्वच्छन्दतावाद' का नाम दिया जाना चाहिए। मैं डॉ० नामवर सिंह के विचार से पूर्णतया सहमत हूँ कि स्वच्छन्दतावाद अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है तथा इसे रोमैण्टिसिज्म नहीं रोमैण्टिसिज्म्स अर्थात् बहुवचन कहना चाहिए किन्तु डॉ० हजारीप्रसाद इसे 'सम्पूर्ण युग की चेतना और विचार-संघर्ष की सुन्दर कलात्मक अभिव्यक्ति' बताकर इसे वैश्विक स्तर पर विश्लेषित करते हुए इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक कर देते हैं। जहाँ तक मेरा अपना विचार है मैं इसे सम्पूर्ण एवं व्यापक विचारधारा मानती

हूँ। जब हम स्वच्छन्दतावाद को आध्यात्मिकता से जोड़ते हैं तो फिर उसे केवल अन्तर्राष्ट्रीय अथवा वैश्विक विचारधारा मान लेना इसके असीमित क्षेत्र को सीमित कर देना है और यह स्वच्छन्दतावाद के प्रति एक अन्याय है।

इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में मुझे कुछ निराशा-सी हो गयी थी जब मुझे डॉ० देवराज उपाध्याय द्वारा स्वच्छन्दतावादी अवधारणा पर लिखित एक-मात्र ग्रन्थ 'रोमाण्टिक साहित्य शास्त्र' की प्राप्ति में विलम्ब हो रहा था। प्रारम्भ में तो ऐसा लगा कि शायद मुझे विषय परिवर्तन न करना पड़े किन्तु अन्ततः मुझे यह पुस्तक प्राप्त हो गयी और आज मुझे अपने इस ग्रंथ का प्राक्कथन लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे स्वच्छन्दतावाद के महान् ज्ञाता और अन्तर्राष्ट्रीय समीक्षक प्रोफेसर अजब सिंह के दिशा-निर्देशन में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। अध्ययन व अन्वेषण के क्रम में मुझे प्रोफेसर अजब सिंह से अदम्य प्रेरणा, प्रोत्साहन और स्नेह प्राप्त हुआ है। अपनी अत्यधिक व्यस्तता के मध्य भी डॉ० सिंह ने मुझे समय दिया, जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के सह-उपकुलपति प्रो० एच० ए० एस० जाफ़री के प्रति आभारी हूँ कि उन्होंने एक विस्तृत आमुख लिखकर अपना मन्तव्य प्रकट किया, आपकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन शब्दातीत हैं।

मैं उन समस्त विद्वानों का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके विचारों से मुझे ज्ञान-रूपी प्रकाश मिला। उन विद्वानों में प्रोफेसर दीनानाथ सिंह, आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार), इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो० योगेन्द्रप्रताप सिंह, सेण्ट्रल यूनिवर्सिटी, हैदराबाद (आ० प्र०) के प्रो० विजेन्द्र नारायण सिंह तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, हिन्दी विभाग के प्रो० शाण्डिल्य, डॉ० आर० सी० शर्मा आदि प्रमुख हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ-लेखन के लिए मैं मौलाना आजाद पुस्तकालय के संचालकों एवं हिन्दी विभागीय पुस्तकालय की संचालिका के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ तथा उनके सहयोग के लिए सदैव ऋणी रहूँगी।

इस अवसर पर मैं अपने जीवनसाथी श्री निसार हैदर रिज़वी को कैसे विस्मृत कर सकती हूँ। सदैव आगे बढ़ने की प्रेरणा मुझे आपसे ही मिली है। प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन के समय मुझे पारिवारिक दायित्वों से मुक्त करना, पुस्तकालय एवं इधर-उधर से पुस्तकें एवं लेखन-सामग्री लाकर देना, टंकण के लिए सामग्री इत्यादि उपलब्ध कराना, ये सब श्री रिज़वी के सहयोग एवं सहायता से ही सम्भव हो सका है।

अपनी पँच वर्षीय पुत्री आफ़रीन एवं दो वर्षीय पुत्र अहमद का सहयोग भी मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा। दोनों ने ही मुझे इस ग्रन्थ लेखन में पूर्ण सहयोग दिया। छोटे भाई को सहयोग देने का दायित्व आफ़रीन ने बड़ी कुशलता से पूर्ण किया।

इस अवसर पर मैं अपने स्व० पिता एच० एम० कुद्दूसी को विस्मृत नहीं कर पा रही हूँ। हिन्दी साहित्य व भाषा के चयन के प्रेरणास्रोत मेरे स्व० पिता ही थे। अपनी माता

श्रीमती ज़किया कुद्दूसी का स्मरण करना अपना दायित्व समझती हूँ, जिन्होंने मुझसे बहुत दूर रहकर मेरे लिए प्रार्थना की और जिनका आशीर्वाद मेरे ग्रन्थ-लेखन में सहयोगी रहा।

पितातुल्य भ्राता न्यायमूर्ति श्री आई० एम० कुद्दूसी का आभार व्यक्त करना मैं अपना दायित्व समझती हूँ। आपके सहयोग, प्रेम एवं प्रेरणा की छात्र-छाया में इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सचिव श्री मेहन्द्र प्रतापजी एवं अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीयजी की मैं आजन्म आभारी रहूँगी कि उनके ही सौजन्य एवं सहयोग से आज मेरे सपनों को साकार रूप मिला। समस्त एकेडेमी परिवार का मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। प्रूफ संशोधन के लिए मैं श्री रमेश कुमार उपाध्यायजी की आभारी हूँ जिनके सहयोग ने आज इस ग्रन्थ को स्तरीय रूप प्रदान किया है।

श्री नीलेन्द्र श्रीवास्तवजी का सहयोग मेरे लिए अविस्मरणीय है, मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ।

पुस्तक की सुन्दर टंकण-व्यवस्था का श्रेय श्री एच० एम० त्रिपाठीजी को है। इसके लिए मैं श्री एच० एम० त्रिपाठी को हृदय से धन्यवाद करती हूँ। इन सबके अतिरिक्त मैं अपने उन सभी सहयोगियों, मित्रों एवं शुभचिंतकों का आभार व्यक्त करती हूँ कि जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, सहयोग एवं स्नेह मेरे आगे बढ़ने में सहायक बना है। अन्ततः लेखिका सभी माध्यमों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है।

शर्मीला डॉली कुद्दूसी
प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

अनुक्रम

व्यक्तित्व की रेखाएँ

हिन्दी समीक्षा की आचार्य परम्परा में डॉ० देवराज उपाध्याय का महत्वपूर्ण स्थान सर्वश्रुत है तथा हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी समीक्षक के रूप के उनका विशेष स्थान है।

डॉ० देवराज उपाध्याय का जन्म सन् 1902 में जनपद शाहाबाद के वमन गाँव में हुआ था।[1] सम्प्रति यह स्थान बिहार प्रान्त के भोजपुर जनपद में है। आपने एम० ए० तथा पी-एच० डी० की उपाधि राजपूताना और पटना विश्वविद्यालयों से प्राप्त की।[2] तत्पश्चात् जसवंत कालेज, जोधपुर में हिन्दी विभाग के शिक्षण-कार्य में तल्लीन हो गये। साहित्य के प्रति आपकी अभिरुचि बाल्यकाल से ही थी। शिक्षा-काल से ही आपका झुकाव विविध पुस्तकों के अध्ययन की ओर था। **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने आलोचना के क्षेत्र का चयन किया था। कथा-साहित्य-क्षेत्र पर आपका पूर्ण अधिकार था जबकि मनोविज्ञान तो उनका अपना ही क्षेत्र था। आपने आलोचना को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों को केंद्र में रखकर अपने चिन्तन से सींचा था, हरा भरा किया था। मनोवैज्ञानिक आलोचना के क्षेत्र में आपका कोई सानी नहीं है। जोधपुर विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् आपने अपना शोध विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के परिकल्प के अन्तर्गत मगध विश्वविद्यालय बोधगया के हरप्रसाद जैन कालेज के हिन्दी विभाग से किया था।

डॉ० देवराज उपाध्याय हिन्दी समीक्षा के एकमात्र समीक्षक हैं, जिन्होंने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के अन्तर्गत पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्यों को अनुशीलन-विश्लेषण के द्वारा मनोवैज्ञानिक चिन्तन-बिन्दुओं को अपनी समीक्षा में स्थान दिया है व उन्होंने अपनी आलोचनात्मक क्षमता का उपयोग कथा साहित्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अनुशीलन में लगाया था।

स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को व्याख्यायित करते हुए **डॉ० उपाध्याय** ने मनोवैज्ञानिक वैचारिकता को अपने चिन्तन का विषय बनाया जिसको हम आधुनिक शब्दावली में एकांगी व्यक्तित्व का विकास भी कह सकते हैं। इन्होंने पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के साथ-साथ **श्रीमती महादेवी वर्मा** की आलोचना पद्धति व **रामकुमार वर्मा** और **महादेवी वर्मा** की गीतियों यहाँ तक कि कविवर **सुमित्रानन्दन पन्त** के **'उच्छवास'** और **प्रसाद** के **'आँसू'** की भी इस संदर्भ में चर्चा की है।[3]

डॉ० देवराज उपाध्याय के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप उनके साहित्य में सहज ही दृष्टिगोचर होती है। वह ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के मालिक थे कि जिसके प्रत्येक भाग से गुणों की भीनी-भीनी सुगन्ध निकलती है। दूसरे शब्दों में हम उनको सर्वगुणसम्पन्न व्यक्तित्व का स्वामी कह सकते हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय आलोचकों की सूची में अग्रणी हैं। आपकी प्रतिभा केवल आलोचना तक ही सीमित न रहकर सर्जनात्मक रचनाओं की ओर प्रवृत्त हुई है। आपकी आलोचना की यह विशेषता है कि वह आलोच्य वस्तु के आधार पर उसमें गहराई तक रमकर भौतिक तत्त्वों का विवेचन करते हैं।

---

1. सं० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, नामवाची शब्दावली, पृ० 247
2. वही, पृ० 247
3. देवराज उपाध्याय ग्रंथावली : खण्ड- 2, पृ० 140

आपके काव्य में मौलिक तत्त्वों के विवेचन की प्रधानता रही है। यही कारण है कि **डॉ० उपाध्याय** का व्यक्तित्व एक मौलिक साहित्य स्रष्टा के रूप में निखरकर सामने आया है। वह एक अत्यन्त सफल आलोचक हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय के व्यक्तित्व में अध्ययन, पाण्डित्य और विद्वत्ता की गुरु गम्भीरता है तथा इसके साथ-ही-साथ दूसरी ओर अधिक स्फूर्ति, मौलिक चिन्तन और प्रेरक तत्त्व तो उनके व्यक्तित्व में चार चाँद लगाते हैं।

डॉ० उपाध्याय स्वभाव से ही गम्भीर और चिन्तनशील व्यक्तित्व के स्वामी हैं। यही कारण है कि साहित्य में उनके व्यक्तित्व के विचार-गाम्भीर्य की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

डॉ० देवराज उपाध्याय के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह है कि वह अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी हैं। प्रत्येक वस्तु का बारीकी से निरीक्षण तत्पश्चात् अनुशीलन, विवेचन और विश्लेषण, परस्पर मनन चिन्तन के बाद ही वह वक्तव्य देते थे।

ग्रहणशीलता तो **डॉ० उपाध्याय** के अन्दर कूट-कूट कर भरी हुई थी। अत्यधिक ग्रहणशील व्यक्तित्व का स्वामी ही विचारों में गहराई तक जा सकता है।

अभिव्यक्ति कौशल किसी भी लेखक, कवि या आलोचक का प्रथम गुण कहा जाता है। इसके अभाव में लेखक मूक लेखक, कवि मूक कवि और आलोचक मूक आलोचक कहलाता है किन्तु **डॉ० उपाध्याय** अभिव्यक्ति कौशल परिपूर्ण थे। इसको अगर हम यह कहें कि चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति में **डॉ० देवराज उपाध्याय** का कोई सानी नहीं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

डॉ० देवराज उपाध्याय अत्यन्त परिश्रमसाध्य व्यक्ति थे। यह उनके असाध्य परिश्रम का ही परिणाम है कि आज उनकी पुस्तकों से हिन्दी साहित्य-ज्ञान-भण्डार में वृद्धि हुई है, जिसके लिए साहित्य आपका चिरऋणी रहेगा।

डॉ० देवराज उपाध्याय राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति समर्पित थे। हिन्दी साहित्य-ज्ञान-भण्डार की रक्षा और उसकी अभिवृद्धि तथा हिन्दी के प्रति लोगों की उदासीनता और उसमें स्तर के प्रति आप अत्यधिक संवेदनशील और चिन्तित थे। वह चाहते थे कि हिन्दी साहित्य ज्ञान-भण्डार की वृद्धि हो और लोग हिन्दी के प्रति उदासीन न होकर अपनी रुझान बढ़ायें। वह हिन्दी भाषा के विकास के प्रति चिन्तित थे।

डॉ० देवराज उपाध्याय का व्यक्तित्व हिन्दी व संस्कृत के साथ-साथ भारतीय दर्शन से अत्यन्त प्रभावित था। **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** नामक पुस्तक में वह कई स्थानों पर पाश्चात्य चिन्तन के समानान्तर भारतीय दर्शन का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इस संदर्भ में उनकी मंशा कुछ और भी थी। वह विश्व को यह भी बताना चाहते थे कि जिस पाश्चात्य दर्शन और चिन्तन के पीछे आज तुम दीवानों की तरह भाग रहे हो वह तो भारतीय मूल के दर्शन में कभी का विद्यमान है। यही कारण है कि कई स्थानों पर वह इस संदर्भ में उद्धरण भी उद्धृत करते चलते हैं।

आध्यात्मिकता **डॉ० देवराज उपाध्याय** के व्यक्तित्व का एक अन्य आकर्षक आकर्षण है। आध्यात्मिकता पूर्ण व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक उनके साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। ईश्वरीय सत्ता के

प्रति झुकाव उनकी सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

उच्च श्रेणी के परिहास के दर्शन भी **डॉ० देवराज उपाध्याय** के साहित्य में प्राप्त होते हैं। उनकी ज़िन्दादिली और सजीव परिहास का नमूना हमें उनकी पुस्तक **'विचार के प्रवाह'** में 'मे री दिल्ली यात्रा संस्मरण में देखने को मिलता है। इस लेख में उन्होंने दिल्ली के पॉकेटमार की कला की प्रशंसा करते उसे कई उपमाएँ दी हैं। उस प्रसंग में आपने राम, सीता तथा संस्कृत के कवियों को भी ला बैठाया है। कहाँ राम-सीता, कहाँ यह मृच्छकटिक का शार्वलिक और दिल्ली का यह पॉकेटमार किन्तु **डॉ० उपाध्याय** उनके सम्बन्ध-सूत्रों को खोज लेते हैं। ऐसे स्थान पर सम्बन्ध-सूत्रों को खोज निकालना जहाँ उनका साधारणतः आभास भी न हो, **डॉ० देवराज उपाध्याय** सरीखे व्यक्तित्व की ही प्रतिभा का कार्य है।

डॉ० देवराज उपाध्याय हिन्दी भाषा का ही ज्ञान नहीं रखते अपितु अंग्रेजी, उर्दू, फारसी तथा संस्कृत भाषा पर भी उन्हें महारत हासिल है। आपने भावाभिव्यक्ति के मध्य चुनिन्दा शेरो-शायरी का उल्लेख भी किया है। साथ-ही-साथ संस्कृत के श्लोक **वेद-रामायण, महाभारत** इत्यादि सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों के श्लोक व पद भी आवश्यकतानुसार यथोचित स्थान पर प्रयुक्त किये हैं। बहुमुखी आलोचक प्रतिभा के धनी **डॉ० देवराज उपाध्याय** का व्यक्तित्व दर्शनीय है।

कृतित्व

डॉ० देवराज उपाध्याय की पुस्तकें उनके जीवन-काल में समय-समय पर प्रकाशित होती ही रहीं जिनमें कुछ विदेशी उपन्यासों के अनुवाद हैं। शेष आलोचना की पुस्तकें हैं। आपके अनुसंधान का विषय **'आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान'** था। इनका शोध-ग्रन्थ 1956 में प्रकाशित हुआ था। इसमें लेखक ने आधुनिक कथा साहित्य पर मनोवैज्ञानिक रूप से विवेचना प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। आपने इस शोध के माध्यम से कथा-साहित्य पर नए ढंग से विचार करने के लिए प्रेरित किया।[1] आपके इस शोधग्रन्थ में अध्ययन, पाण्डित्य और विद्वत्ता की गुरु गंभीरता के दर्शन होते हैं।[2] जो **डॉ० उपाध्याय** के व्यक्तित्व की विशेषता है।

इसके अतिरिक्त **डॉ० देवराज उपाध्याय** की एक अन्य पुस्तक काव्यशास्त्र से सम्बन्धित है, जिसका नाम **'रोमांटिक साहित्य शास्त्र'** है। इस पुस्तक में आपने काव्य सम्बन्धी रचना-प्रक्रिया और शास्त्रीय विवेचना पर विचार किया है। इस पुस्तक में उन्होंने पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य को अनुशीलन व विश्लेषण के द्वारा मनोवैज्ञानिक चिन्तन बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में परखा है। यद्यपि अपनी आलोचनात्मक क्षमता का उपयोग कथा-साहित्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व अनुशीलन में लगाया था किन्तु अपनी पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य शास्त्र'** के क्लासिकल और रोमांटिक अवधारणाओं को विश्लेषित करते हुए पाश्चात्य अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों को ही उन्होंने अध्ययन-विश्लेषण का आधार बनाया था। क्लासिकल और रोमांटिक अवधारणाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण-अनुशीलन करते हुए वे एडिसन के 'हास्य सम्बन्धी' और **'पैराडाइज़ लॉस्ट'** सम्बन्धी विचारों को संकलित करते हुए, एडिसन के काव्योचित न्याय विषयक सिद्धान्तों से 'काव्य-सिद्धान्त' सम्बन्धी चर्चा का श्रीगणेश करते हैं। **लेसिंग** के काव्य और मूर्तिकला के स्वभावगत मौलिक भेद का विश्लेषण करते हुए **डॉ०**

---

1. विश्वनाथ प्रसाद : *भूमिका-विचार के प्रवाह*
2. विश्वनाथ प्रसाद : *भूमिका-विचार के प्रवाह*

उपाध्याय, परसी विशी शेली द्वारा विश्लेषित काव्य के स्वरूप, उसकी प्रेरणा आदि तत्त्वों को अपने चिन्तन का विषय बनाते हुए प्रकृति, कला और कलाकार के परस्पर सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए कल्पना के पुनर्सृजन, काव्य तथा कल्पना की व्यापकता की व्याख्या व विवेचन करते हैं।

इसी क्रम में **विलियम वर्ड्स्वर्थ**, उसकी कविता और काव्यशास्त्र का उल्लेख करते हुए **डॉ० देवराज उपाध्याय** Lyrical Ballads की भूमिका को रोमांटिक साहित्यशास्त्र का बाइबिल कहते हैं और इसी काव्य-संग्रह से पाश्चात्य रोमांटिक साहित्यशास्त्र का प्रारम्भ मानते हैं। **कॉलरिज** द्वारा प्रतिपादित आलोचना-सिद्धान्त, गद्य-पद्य भेद तथा साहित्य में यथार्थ और विधायक कल्पना सम्बन्धी विचारों का आपने बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण, विश्लेषण और अनुशीलन किया है। अपनी पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** के अन्तिम अनुकरण में **रस्किन** के काव्य-सिद्धान्तों की व्याख्या भी करते हैं। काव्य-स्रोत के रूप में कार्य करनेवाले तत्त्वों शक्ति, सत्यता, अनुकृति आदि का सुन्दर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए वे **रस्किन** द्वारा प्रतिपादित काव्य क्या है तथा कविता या कला के महत्त्व के क्रम का विकास चर्चित कर कलाकार के महत्त्व का निरूपण करते हैं।

'कथा साहित्य के मनोवैज्ञानिक समीक्षा सिद्धान्त' नामक अपनी पुस्तक में जीवन की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि की व्याख्या करते हुए मनोवैज्ञानिक जीवन का प्रारम्भ, जीवन व्यापार में मनोविज्ञान की प्रधानता, मनोविज्ञान, मनश्चिकित्सा, मनोविश्लेषण तथा अचेतन व सम्मोहन के साथ **डॉ० उपाध्याय** अपनी पुस्तक के प्रथम अनुक्रम में अचेतन के स्वरूप की व्याख्या, बोध और अनुचिन्तन, जीवन में चेतना का महत्व, उसका वास्तविक स्वरूप इन बिन्दुओं को बड़ी बारीकी से विश्लेषित करते हैं। आपने अचेतन का महत्त्व तथा उसके वास्तविक रूप का विश्लेषण दो कथाओं के आधार पर किया है। इस प्रकार जीवन एवं साहित्य में आन्तरिकता की प्रवृत्ति हमें स्वच्छन्दतावादी वैचारिकता व अवधारणा के निकट लाती है। यह अवधारणा मनोवैज्ञानिकता के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को लेकर अपनी यात्रा को परिपूर्णता की ओर ले जाती है। निष्कर्ष रूप में उनके व्यक्तित्व में मनोवैज्ञानिकता के चिन्तन की ऊर्जा का स्फुरण देखने को मिलता है। वे मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं को कथा साहित्य परिप्रेक्ष्य में देखते तो ही हैं साथ-ही-साथ उपन्यास और काव्य के द्वारा कविता और उपन्यास, गद्य और पद्य में भेद, **कॉलरिज** के काव्य-सम्बन्धी विचार और कविता तथा उपन्यास की रचना प्रणाली को भी रेखांकित करते हैं। इसके साथ ही **डॉ० देवराज उपाध्याय** काव्य तथा उपन्यास के पृथक्करण के प्रश्न और भाषा के ध्रुवीकरण को अपने वैज्ञानिक और उपन्यास के अनुकरण के द्वारा एक सारगर्भित व्यापक व्याख्या भी देते हैं।

स्वप्न, दिवास्वप्न तथा उपन्यास अनुकरण में मनोविज्ञान के विकास का कारण, प्रवृत्ति आवेग की माँग की पूर्ति में असंतुलन और इस असन्तुलन का मनुष्य पर प्रभाव, स्वप्नों का अध्ययन, स्वप्न, दिवा स्वप्न तथा उपन्यासों की प्रक्रिया में अन्तर, रोमांटिक और क्लासिकल साहित्य में अन्तर, दिवास्वप्न, स्वप्न साहित्य और आन्तरिक अभिव्यक्ति, कला को अभिव्यक्ति से आगे के प्रभाव को भी लेना चाहिए इत्यादि को अपने चिन्तन का विषय बनाया। इस प्रकार इनका समीक्षा-सिद्धान्त केवल आन्तरिक एवं अन्तर्मन की अन्तः प्रवृत्तियों का उच्छृंखल मात्र नहीं वरन् आन्तरिक प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में कला को बाह्याभिव्यक्ति के प्रभाव को भी ग्रहण चाहिए। **डॉ० उपाध्याय** अन्तःपरिवेश के साथ-साथ बाह्य परिवेश को भी कला के मनोवैज्ञानिक चिन्तन के लिए आवश्यक बतलाते हैं। कुछ कथाओं का

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी इस ग्रंथ के अन्तिम अनुभाग में प्रस्तुत किया गया है। कुल मिलाकर उनकी समीक्षा दृष्टि अन्तःमन की गंगा में गोता तो लगाती ही हैं साथ ही, उस गंगा को उपन्यास विधा, इन सबके माध्यम से विश्लेषण का आधार मिलता है।

'मनोवृत्तानुवर्ती आख्यान रचना' में **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने अपने चिन्तन को दो खण्डों में बाँट दिया है। खण्ड एक में मानव प्रवृत्तियाँ, कला : एक जैविक प्रवृत्ति-आदतें और मनोविज्ञान, विचार स्वातन्त्र्य, परिस्थितियों के साथ सामंजस्य तथा दूसरे खण्ड के अन्तिम अनुभाग में आख्यान और जीवन की मनोवृत्तियों को अपने विश्लेषण का आधार बनाया है। यह शोध-ग्रन्थ **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने अपने जीवन की अन्तिम क्षणों में उन्होंने जोधपुर विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण कर, मगध विश्वविद्यालय बोधगया के, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग हर प्रसाद जैन कालेज से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के 'अपना शोध परिकल्प तथा परियोजना' के अन्तर्गत पूरा किया था। इस ग्रन्थ के माध्यम से **डॉ० उपाध्याय** साहित्य की अवधारणा में मनोवैज्ञानिक आन्तरिक चिन्तन की चहारदिवारी से आगे बढ़ते हैं और विचार स्वातंत्र्य, परिस्थितियों के साथ सामंजस्य तथा कल्पना और सत्य को साहित्य की व्याख्या के लिए अनिवार्य मानते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी समीक्षा दृष्टि अनुभूति एवं परिवेश, वैयक्तिकता एवं सामाजिकता तथा आदर्श और यथार्थ की समन्वित चेतना से काव्य की उत्कृष्टता को उभारती है। यही कारण है कि आधुनिक समीक्षकों ने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को केवल आन्तरिकता एवं वैयक्तिकता से जोड़कर नहीं रखा है। आज स्वच्छन्दतावादी कला अन्तः एवं बाह्य का मिलन है और ऐसी स्थिति में मनोवैज्ञानिक समीक्षक के रीउ में इन्होंने समष्टिगत कला वैशिष्ट्य को कल्पना और सत्य विचार स्वातंत्र्य के साथ परिस्थितियों के सामंजस्य को उत्कृष्ट कला के निष्कर्ष का आधार बनाया। इस प्रकार इस अद्यतन वैचारिकता को अपनी समीक्षा-दृष्टि से आत्मसात् करने के संदर्भ में वे साधुवाद के पात्र हैं।

'विचार के प्रवाह' डॉ० देवराज उपाध्याय की एक अन्य कृति है। उन्होंने इस पुस्तक में **महादेवी वर्मा** की आलोचना-पद्धति, आधुनिक काव्य, **कविताएँ 1954 संकलन, वर्षान्त के बादल, अंचल, बोलो के देवता** (सुश्री **सुमित्रा कुमारी सिन्हा**) तथा **साहित्य में कल्पना तथा इतिहास, सत्य का महत्त्व** आदि को अपने अनुशीलन-विश्लेषण का विषय बनाया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में भी **डॉ० उपाध्याय** ने काव्य और साहित्य के लिए कल्पना तथा इतिहास, सत्य को साहित्य की व्याख्या के लिए अनिवार्य माना है। उनकी आलोचना में मौलिक तत्वों का विवेचन विश्लेषण अधिकतर किया जाता है। **'विचार के प्रवाह'** में कुछ निबन्ध वैयक्तिक निबन्धों की श्रेणी में आते हैं जैसे 'मेरी दिल्ली यात्रा', 'असुविधा का उपयोग', 'एक पत्र' आदि इनमें जिस आत्मीयता के साथ बातें की गयी हैं, हृदय की तस्वीर जिस सच्चाई के साथ खींची गयी अन्यत्र दुर्लभ है।[1]

डॉ० देवराज उपाध्याय की कृति **'विचार के प्रवाह'** की प्रशंसा में भी **विश्वनाथ प्रसाद** के निम्न शब्द द्रष्टव्य हैं ''विचार के प्रवाह में उपाध्याय जी के मानस-प्रदेश या हृदय-प्रदेश में एक नये बीज को अंकुरित होते देखा जा सकता है। उसी तरह से जैसे पत्थर को फोड़कर हरियाली पंक्ति झाँकती हो।[2]

1. विश्वनाथ प्रसाद : *भूमिका-विचार के प्रवाह*
2. वही, भूमिका, 'विचार के प्रवाह'

'विचार के प्रवाह' में **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने अच्छा परिहास भी किया है। उच्च-कोटि के हास्य के दर्शन उनके **'मेरी दिल्ली यात्रा'** शीर्षक लेख में होते हैं। एक 'पॉकेटमार' की कला की प्रशंसा विभिन्न उपमाओं के द्वारा की है। यहाँ तक कि प्रसंगवश आपने राम-सीता और संस्कृत के कवियों को भी उद्धृत किया है। **श्री विश्वनाथ प्रसाद** तत्कालीन संचालक क० मु० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, **'विचार के प्रवाह'** की भूमिका में इस उत्कृष्ट हास्य से अत्यन्त प्रभावित दिखायी देते हैं। उनके निम्न शब्द द्रष्टव्य है:

''मैंने इस **'विचार के प्रवाह'** को बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ा है। कहीं-कहीं तो **उपाध्याय जी** की ज़िन्दादिली और सजीव परिहास से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। उदाहरण के लिए **'मेरी दिल्ली यात्रा'** शीर्षक लेख में उन्होंने पॉकेटमार की कला की प्रशंसा की है तथा कैसी-कैसी उपमाएँ दी है। उस प्रसंग में आपने राम-सीता तथा संस्कृत के कवियों को भी ला बिठाया है। कहाँ राम-सीता कहाँ मृच्छकटिक का शार्वलिक और कहाँ यह दिल्ली का पॉकेटमार। पर **डॉ० उपाध्याय** की प्रतिभा ने इनके सम्बन्ध सूत्रों को खोज ही लिया है।'[1]

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चाहे मौलिक विवेचन अथवा मौलिक निबन्ध हो या वैयक्तिक निबन्ध **डॉ० उपाध्याय** प्रत्येक क्षेत्र में सफल समीक्षक-आलोचक हैं।

'कथा के तत्त्व' नामक पुस्तक **डॉ० उपाध्याय** की आधुनिक कथा-साहित्य और मनोविज्ञान विषयक कई बातों में विशिष्टता दिखाती है। इस पुस्तक में स्फूर्ति, मौलिक चिन्तन तथा प्रेरक तत्त्व है।[2] **डॉ० देवराज उपाध्याय** स्वयं **'विचार के प्रवाह'** पुस्तक के प्राक्कथन में **'कथा के तत्त्व'** नामकरण के औचित्य के बारे में लिखते हैं कि-

''**कथा के तत्व'** को लेकर भी एक-दो बन्धुओं ने उसके नामकरण के औचित्य की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। कहा था कि उसका नाम आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य होना चाहिए था। एक ने तो यह भी कहा था कि नाम तो इस पुस्तक का है कथा के तत्त्व पर तथ्य से अधिक विस्तार की बात कही गयी है। मैंने उनसे यही कहा था कि कथा के तत्त्व से कथा के विस्तार का तत्व समझ लीजिए और ऐसा मान लीजिए कि भाषा के लाघव तथा आकुंचन की प्रवृत्ति के कारण विस्तार का लोप हो गया है।''[3] अतएव स्पष्ट है कि **'कथा के तत्त्व'** पुस्तक में **डॉ० उपाध्याय** ने कथा-साहित्य के तत्वों का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया है।

व्यक्तिगत निबन्धों और साहित्यिक निबन्धों का एक संकलन **'रेखा'** भी **डॉ० उपाध्याय** की ओर से हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।[4] इसमें व्यक्तिगत निबन्धों की वह परम्परा जो भारतेन्दु-युग में **श्री प्रतापनारायण मिश्र** तथा **श्री बालकृष्ण भट्ट** आदि ने प्रारम्भ की थी और **स्व० श्री रामचन्द्र शुक्ल** के प्रयासों से जिसे गाम्भीर्य और प्रौढ़ता प्राप्त हुई थी **डॉ० उपाध्याय** के प्रयत्नों ने उसे **'रेखा'** के माध्यम से पुनर्जीवित किया है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त **लियोनार्ड फ्रेंक** द्वारा लिखित **'कार्ल एण्ड एनना'** का भी आपने हिन्दी में सारगर्भित अनुवाद किया तथा **महात्मा गान्धी** की पुस्तक **''India of My Dreams''** का भी अनुवाद उनके कर कमलों द्वारा ही संभव हो सका है।[5]

---

1. विश्वनाथ प्रसाद : *भूमिका-विचार के प्रवाह*
2. वही,
3. डॉ० देवराज उपाध्याय : *लेखक की ओर से, विचार के प्रवाह*
4. हिन्दी साहित्य कोश, नामवाची शब्दावली, पृ० 247
5. वही,

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का विकास

स्वच्छन्दतावाद शब्द अंग्रेजी के Romanticism का हिन्दी अनुवाद है। सबसे पहले **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** ने अपने **हिन्दी साहित्य के इतिहास** में Romanticism के लिए हिन्दी अनुवाद 'स्वच्छन्दतावाद' किया और इसी क्रम में 'स्वच्छन्दतावाद और छायावाद' को रेखांकित किया। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने **डॉ० देवराज उपाध्याय** की पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** की भूमिका में Romanticism के हिन्दी अनुवाद स्वच्छन्दतावाद पर आपत्ति की है तथा उसे अत्यन्त सीमित अर्थ का शब्द कहा है किन्तु उसके विकल्प में कोई शब्द भी नहीं सुझाया है परन्तु कई स्थानों पर Romanticism को **डॉ० द्विवेदी** ने 'रोमांटिक साहित्य' के नाम से ही सम्बोधित किया है। **'प्रसाद'** जयन्ती 1962 के अवसर पर 'सभा भवन' में हो रहे कार्यक्रम में इसे 'रमन्तवाद' के नाम से अभिहित किया गया था।[1] लेकिन इसे नकार दिया गया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध समालोचक **डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल** ने अपने शोध-प्रबन्ध **'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य** में 'रोमांटिसिज्म' को 'रोमांसवाद' कहा है।[2] **डॉ० रामधारी सिंह दिनकर** ने भी अपनी पुस्तक **शुद्ध कविता की खोज** में रोमांटिसिज़्म को 'रोमांसवाद' ही कहा है।[3] **डॉ० अजब सिंह** का मत है कि वादों की उत्पत्ति सदैव आलोचना से ही होती है, साहित्य-सर्जना से सीधे नहीं। इस रोमांटिक युग की कविता की मुख्य प्रवृत्तियों को मापने के लिए उसे वाद (इज़्म) के रूप में परिलक्षित किया जाने लगा और उसका नामकरण संस्कार रोमांटिसिज़्म किया गया। इस प्रकार रोमांस से रोमांटिक तथा रोमांटिक से रोमांटिसिज्म रूप निःसृत हुआ।[4] अतः रोमांटिसिज़्म के लिए स्वच्छन्दतावाद शब्द का ही सर्वाधिक प्रयोग होने लगा है।

स्वच्छन्दतावाद क्या है? इस संदर्भ में बहुत से पाश्चात्य एवं भारतीय आलोचकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

एफ० डब्ल्यू० वेटसन के विचार स्वच्छन्दतावाद के संदर्भ में विचार कुछ इस प्रकार हैं:

"The nature-symbol, the synthetic link between the conscious and the unconscious mind, is the basic unit of Romantic Poetry."

अर्थात् प्रकृति-प्रतीक, जो चेतन और अवचेतन मस्तिष्क के बीच समन्वयात्मक कड़ी है, वह स्वच्छन्दतावादी कविता की मूल इकाई है।[5] **Culture and society** में **रेयमण्ड विलियम्स** ने स्वच्छन्दतावाद को इस रूप में व्याख्यायित किया है, "स्वच्छन्दतावाद की एक वृत्ति कला की नियमबन्द्धता का सक्षम परित्याग है और दूसरी वृत्ति जगत् के अनावृत रहस्यों का अध्ययन है।"[6]

हिन्दी आलोचकों में सर्वप्रथम **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने स्वच्छन्दतावाद को रेखांकित किया था। वे स्वच्छन्दतावादी कविता को कृत्रिम और रूढ़िवाद काव्य-प्रवाह की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 1
2. डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, *आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य,* पृ० 318-319
3. डॉ० रामधारी सिंह दिनकल, *शुद्ध कविता की खोज,* पृ० 29
4. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 1
5. वही, पृ० 40
6. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 14

स्वाभाविक भावधारा की कविता मानते हैं। उनका कथन है कि ''प्रकृति प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का सम्पूर्ण परिचय, उनकी गतिविधि पर आत्मीयता व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुःख में उनके साहचर्य की भावना यह सब बातें स्वच्छन्दतावाद के पदचिन्ह हैं।''[1]

डॉ० अजब सिंह अपनी पुस्तक **'आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ'** में लिखते हैं कि **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** की यह परिभाषा अंग्रेजी के रोमाँटिसिज़्म के केवल एक ही पक्ष को उजागर करती है। अतः **आचार्य शुक्ल** ने जिन कवियों अर्थात् **श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, गुरुभक्त सिंह** तथा **उदयशंकर भट्ट** आदि को स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधि कवि घोषित किया है वे सभी इस नूतन काव्यान्दोलन के प्रारम्भिक कवि माने जा सकते हैं, प्रतिनिधि कवि नहीं।

डॉ० नामवर सिंह भी अपनी बहुचर्चित पुस्तक **'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ** में **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** द्वारा प्रतिपादित इस परिभाषा को अत्यन्त सीमित अर्थ की परिभाषा घोषित करते हैं। आपका तर्क है कि **आचार्य शुक्ल** की इस सीमित अर्थवाली परिभाषा के क्षेत्र के अन्तर्गत सम्पूर्ण छायावादी कवि भी नहीं आ सके, केवल **श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, गुरुभक्त सिंह, सियाराम शरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, उदयशंकर भट्ट** तथा संभवतः **नवीन** और **माखनलाल चतुर्वेदी** को छोड़कर। **शुक्ल जी** की इस परिभाषा में छायावादी रहस्य की भावना भी स्थान पाने से वंचित रह गई और यही कारण था कि Romanticism का अनुवाद स्वच्छन्दतावाद, छायावाद का केवल एक अंग बन गया और छायावाद सम्पूर्ण स्वच्छन्दतावाद का वाचक।

डॉ० नामवर सिंह स्वच्छन्दतावाद को अत्यन्त व्यापक रूप से विश्लेषित करते हुए इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा कहते हैं। उनके कथनानुसार, ''यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा है। रोमांटिसिज़्म को रोमांटिसिज़्मस कहना चाहिए अर्थात् एकवचन नहीं बहुवचन। क्योंकि कोई एक रोमांटिसिज्म था ही नहीं। हिन्दी में ही देखें तो **पन्त** और **निराला** में बड़ा फर्क है। **प्रसाद, महादेवी, पन्त, निराला** सब अलग-अलग हैं। देखा जाये तो निराला का सौन्दर्य शास्त्र वह नहीं जो **पन्त** का था। कुछ बातें जरूर सामान्य थीं लेकिन बहुत-सी अलग भी हैं।''[2]

डॉ० नामवर सिंह 'कविता के नए प्रतिमान' में क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद का आह्वान करते हैं। **मुक्तिबोध** की कविता **'अँधेरे'** के संदर्भ में वे **'क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद'** का उल्लेख करते हैं। इसी क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद को **डॉ० अजब सिंह** ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक **नवस्वच्छन्दतावाद** में नवस्वच्छन्दतावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में विश्लेषित किया है।

डॉ० नामवर सिंह के विचारों का पूर्वाभास वर्षों पूर्व **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** द्वारा **डॉ० देवराज उपाध्याय** की पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य -शास्त्र'** की भूमिका में व्यक्त विचारों से हो गया था। **डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी** के कथनानुसार- ''यह कहना कि **कबीर** का रहस्यवाद **रवीन्द्रनाथ** का रहस्यवाद है या **मीरा** का ही रूपान्तर **महादेवी वर्मा** हैं, पूर्ण सत्य नहीं है। ऐसी बातें विचारगत गंभीरता का निदर्शन नहीं है। इतिहास अपने आपको चाहे तथ्यात्मक जगत् में कभी-कभी दुहरा भी देता हो परन्तु विचारों की दुनिया में वह जो गया तो गया। मनुष्य का जीवन अपना उपमान आप ही है।''[3]

---

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* 13वाँ सं० पृ० 628
2. संकलन एवं सम्पादन समीक्षा ठाकुर-कहना होगा, पृ० 110
3. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र, भूमिका,* : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० 4

अतः **डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी** स्वच्छन्दतावाद को इस सम्पूर्ण विश्व की अवधारणा मानते हैं, सम्पूर्ण युग की चेतना का सार मानते हुए कहते हैं कि, ''यह साहित्य अपने युग की सम्पूर्ण चेतना और विचार-संघर्ष की सुन्दर कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह समविरोध की ही चीज है।''[1]

डॉ० देवराज उपाध्याय अपनी पुस्तक **रोमांटिक साहित्य-शास्त्र** में कहते हैं कि रोमांटिक काव्य तो स्वतः प्रसूत काव्य है। इसके लिए कवि को परिश्रम नहीं करना पड़ता है न रोमांटिक कविता को तराशने की आवश्यकता ही पड़ती है। वह तो स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए कवि को विवश कर देती है। यह किसी बाहरी प्रभाव के कारण नहीं वरन् कवि के अन्तःकरण की आवाज होती है। उस युग की आत्मा की आवाज होती है जो कवि के माध्यम से प्रकट होती है। यह अपनी अभिव्यक्ति की भाषा भी अपने साथ लेकर आती है। उनके अनुसार, ''सत्य की आन्तरिक ज्योति अपनी अभिव्यक्ति की भाषा को साथ लिये आती है। गान आह से निकलता है और आँखों से निकल कविता चुपचाप बह जाती है। इस मनोवृत्ति से प्रसूत कविता रोमांटिक कविता होगी।''[2]

डॉ० उपाध्याय रोमांटिक काव्य को क्लासिकल काव्य से इतर भिन्न अवस्था में रख रोमांटिक काव्य को पुनः विश्लेषित करते हैं-''क्लासिकल काव्य में क्या नहीं है? सब कुछ है, रूप है, रंग है, अंग सौष्ठव है और है बाहरी साज-सज्जा और नहीं है तो केवल आन्तरिक जीवन का प्राण स्पन्दन।''[3]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, स्वातंत्र्य की लालसा और बन्धनों का त्याग रोमांटिक धारा के रूप में व्याप्त है।''[4]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वतंत्रता की अभिलाषा और प्राचीन रूढ़ि, बन्धनों के प्रति विद्रोह व अमान्यता की भावना को स्वच्छन्दतावादी कविता के लिए आवश्यक बताया है किन्तु इस संदर्भ में वह पुनः तर्क देते हैं कि ''रोमांटिसिज़्म में वस्तु का उदात्त होना आवश्यक नहीं साधारण-से-साधारण वस्तु में भी काव्यात्मक चित्रण बनने की क्षमता है, यह स्वच्छन्दतावादी मत है। रोमांटिक काव्य-पद्धति में चित्रण के योग्य कोई सीमा निर्धारित नहीं है ''[5] अतः **आचार्य वाजपेयी** का साधारण वस्तु का अंकन उनका स्वच्छन्दतावादी मत है ऐसा विचार **डॉ० अजब सिंह** का है।

डॉ० नामवर सिंह स्वच्छन्दतावाद को ''प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा[6] मानते हैं किन्तु स्वच्छन्दतावाद केवल विद्रोह नहीं है, प्रकृति के प्रति गम्भीर प्रेम, व्यक्तिगत जीवानुभूति स्वच्छन्द व रमणीय कल्पना आदि भी है।

कवि आलोचक **डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण'** का कथन है कि, ''हिन्दी स्वच्छन्दतावाद या रोमांसवाद के मूलतत्व प्रायः वे थे जो अंग्रेजी कविता के रोमांसवाद में प्राप्त होते हैं अर्थात् रूढ़ियों से मुक्ति, व्यक्तिगत जीवानुभूति, स्वच्छन्द व रमणीय कल्पना, प्रकृति के प्रति गम्भीर प्रेम तथा उसमें चेतन सत्ता का आरोप, अतीत और भविष्य के प्रति लालसा, ललक, बौद्धिकता के स्थान पर कोमल

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र, भूमिका,* : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 4
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 19
3. वही, पृ० 126
4. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, *आधुनिक-साहित्य* पृ० 439
5. वही, पृ० 443
6. डॉ० नामवर सिंह, *छायावाद,* पृ० 15

भावना का प्राधान्य, मुक्त छन्द विधान आदि।''[1] यह विश्लेषण स्वच्छन्दतावादी प्रायः सम्पूर्ण प्रवृत्तियों की झलक देता है।

डॉ० विश्वनाथ प्रताप मिश्र 'हिन्दी का समसामयिक इतिहास' में स्वच्छन्दतावाद को 'सामाजिक बन्धनों को तोड़कर जीवन में स्वच्छन्द विचरण करने की लालसा'[2] कहकर विश्लेषित करते हैं।

मानविकी पारिभाषिक कोश का सम्पादन करते हुए **डॉ० नगेन्द्र** स्वच्छन्दतावाद को इस प्रकार विश्लेषित करते हैं-''राष्ट्रीय अतीत तथा मध्य युग से सम्बद्ध दृश्यों घटनाओं एवं पात्रों का चित्रण, अमूर्त की अपेक्षा मूर्त की स्वीकृति, प्राकृतिक दृश्यावली तथा तज्जनित प्रबल रागात्मक अद्भुत तथा विस्मयोत्पादक व्यापार, आत्मा और परमात्मा, स्वप्न तथा अवचेतन ये सभी स्वच्छन्दतावाद के प्रिय विषय रहे हैं। गीतात्मकता, दिवास्वप्नबहुलता, कल्पना तथा उत्प्रेरणा इस साहित्य के प्रमुख लक्षण हैं।''[3]

डॉ० नगेन्द्र के इस विश्लेषण में स्वच्छन्दतावाद का मूल तत्त्व विद्रोह का आकलन नहीं हो पाया है।

डॉ० रामचन्द्र मिश्र का कथन है कि -''स्वच्छन्दतावादी काव्य, काव्य की विशेष सर्जना है, जो कल्पना और आवेग से युक्त परम्परागत विधान और बाह्यांग नियंत्रण से विमुक्त और मानसिक सरलता और अकृत्रिमता से सम्पन्न मानसिक तथा लोकभूमि की भावनाओं से युक्त है।''[4]

इस विश्लेषण में स्वच्छन्दतावाद के प्रायः सभी तत्त्वों का आकलन तो है किन्तु मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक संदर्भ में कोई विवरण लेखक की ओर से नहीं मिला अतः यह परिभाषा स्वच्छन्दतावाद के सम्पूर्ण घेरे को व्यक्त करने में असमर्थ है। फलतः यह परिभाषा भी पूर्ण नहीं कही जा सकती है। **डॉ० अजब सिंह** के अनुसार -''स्वच्छन्दतावाद नवीन अनुभूति की भूमि पर पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों से विद्रोह कर, चेतन प्रकृति तथा लोक-जीवन की अनुभूति को वाणी देता है। नये काव्य रूपों, नयी शैलियों को पल्लवित एवं पुष्पित करता है। चेतन और अचेतन, विषय और विषयी, अन्तः और बाह्य, मानव और प्रकृति दो विरोधी तत्वों का समन्वय भी करता है तथा इसकी दुनियाँ पूरी तरह से नयी होती है।''[5] **डॉ० सिंह** द्वारा दिये गये इस विश्लेषण में स्वच्छन्दतावाद के प्रायः सभी तत्त्वों को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है साथ ही, स्वच्छन्दतावाद को एक विस्तृत फलक पर विश्लेषित भी किया है तथा इसका क्षेत्र-विस्तार कर दिया है। स्वयं मेरे विचार में स्वच्छन्दतावाद कुछ इस प्रकार भी विश्लेषित किया जा सकता है:

वह विस्मय एवं रहस्य से पूर्ण, दार्शनिकता का पुट लिये, आध्यात्मिकता से मण्डित, स्वतः प्रसूत काव्य, जो यथार्थ की भूमि पर नवीन अनुभूतियों के वातावरण में बोधातीत सत्य के प्रति विचारशील, युग की सम्पूर्ण चेतना व विचारों से संघर्ष करता हुआ, प्रत्येक नियम व परम्परा को

---

1. डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, *आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य,* पृ० 325
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 17
3. डॉ० नगेन्द्र, *मानविकी परिभाषिक कोश (साहित्य-खण्ड),* पृ० 226-227
4. डॉ० रामचन्द्र मिश्र, *पं० श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी-काव्य,* पृ० 46
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 18

तोड़ता हुआ, स्वातन्त्र्य का पक्षधर, राष्ट्र एवं प्रकृति प्रेम से पुलकित, प्रवृत्ति से चंचल, कृत्रिमता से परे, सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति लिये, जो ऐन्द्रिय ग्राह्य हो, अवचेतन मस्तिष्क पर प्रतिबिम्बित हो, मानसिक व्यापार में संलग्न हो जाये, अन्तः एवं बाह्य, जड़ तथा चेतन दो परस्पर-विरोधी तत्वों को इस प्रकार समन्वित कर दे कि वे एक ही प्रतीत हों, जो कवि के अन्तःकरण की आवाज हो, आन्तरिक स्पन्दन जिसका प्राण हो, आन्तरिक अदम्य प्रेरणा जिसकी जननी हो, जिसका संसार वह 'स्वयं' हो अन्ततः आनन्दोद्रेक जिसका परम लक्ष्य हो, वही स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का उत्स बनता है।

स्वच्छन्दतावादी कविता का जो विकसित रूप हमें आज मिलता है वह इसके क्रमिक विकास का परिणाम है। यूँ तो स्वच्छन्दतावादी कविता का शनैः शनैः क्रमशः विकास हुआ है किन्तु स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की रेखा, **भारतेन्दु-युग** से ही उभरती दिखाई देती है। **बोधा, ठाकुर** और **घनानन्द** के काव्यों में स्वच्छन्दतावाद के अंकुर स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। **राजा लक्ष्मणप्रसाद सिंह** द्वारा किये गये हिन्दी अनुवादों **'शकुन्तला'** एवं **'मेघदूत'** में भी स्वच्छन्दतावादी प्रेम तत्त्व व्यक्त हुआ है। **बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'** में भी स्वच्छन्दतावादी तत्वों के अंकुर फूट पड़े हैं। इसमें वह **भारतेन्दु** से भी कहीं आगे निकल गये हैं। **'प्रेमघन'** की **कजलियाँ** एवं **लावनियाँ** अधिक लौकिक और ग्रामीण हैं। काव्य में व्यक्तिवाद और प्रेमपरक शृंगारी काव्य के दर्शन **ठाकुर जगमोहन सिंह** के काव्य में मिलता है। इनके काव्य में प्रेम बड़े ही उदात्त रूप में विद्यमान है वह स्वयं अपनी श्यामा के श्यामसुन्दर दिखायी देते हैं। प्रेम का यह उदात्त रूप स्वच्छन्दतावाद में अत्यन्त अपेक्षित है। **भारतेन्दु-युग** में स्वच्छन्दतावादी कवि कहलाने का श्रेय **ठाकुर जगमोहन सिंह** को ही जाता है। भाषा एवं छन्द आदि के सम्बन्ध में वे प्राचीन परम्परा को नहीं तोड़ सके, कोई नवीनता नहीं ला सके तथा परम्परावादी ही सिद्ध हुए। अतः उनके काव्य में शास्त्रीयता के भी दर्शन होते हैं।

भारतेन्दु-युग में स्वच्छन्दतावादी चेतना का कोई स्पष्ट रूप नहीं मिलता। इस युग में भाषा छन्द एवं भाव के क्षेत्र में कुछ कुछ नवीनता आने के कारण प्रेरक शक्ति अवश्य उत्पन्न हो गयी थी कि जिसने रूढ़िवादिता को समाप्त करने की चेष्टा की थी किन्तु स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ नहीं दिखायी देतीं। स्वच्छन्दतावादी भावना की अस्पष्टता के मध्य **भारतेन्दु काल** में कविता की जो धारा उद्भूत हुई आगे चलकर उसका विकास 'छायावाद' के रूप में हुआ। स्वच्छन्दतावादी कविता छायावादी कविता के समानान्तर भले ही उससे निर्बल किन्तु चलती रही किन्तु आगे जाकर स्वच्छन्दतावाद और छायावाद आपस में इतने घुल मिल गये कि उन्हें एक ही समझा जाने लगा।

यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य के अंकुर **भारतेन्दु-काल** के काव्य में ही फूट पड़े थे किन्तु रीतिकाल की रूढ़ियों को तोड़कर स्वच्छन्द काव्य की रचना का श्री गणेश **पं० श्रीधर पाठक** से ही माना जाता है। अतः **पं० श्रीधर पाठक** ही स्वच्छन्दतावादी काव्य के अग्रदूत माने जा सकते हैं। सच्चे स्वच्छन्दतावादी कवि होने के कारण ही स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को उनसे अत्यधिक बल मिला था। इस काव्यान्दोलन में **पं० श्रीधर पाठक** का साथ देनेवालों में **पं० रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय,** तथा **मुकुटधर पाण्डेय** का नाम अग्रणी है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास** में इस संदर्भ में लिखते हैं कि, "स्वच्छन्दतावाद का आभास पहले-पहल **पं० श्रीधर पाठक** ने ही दिया और सब बातों पर विचार करने पर **पं० श्रीधर पाठक** ही सच्चे स्वच्छन्दतावाद, रोमांटिसिज़्म के प्रवर्तक ठहरते हैं।"[1]

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 12

आचार्य शुक्ल द्वारा प्रतिपादित स्वच्छन्दतावाद के विकास की रूपरेखा बाद में मान्यता नहीं प्राप्त कर सकी। **आचार्य शुक्ल** के अनुसार-न **पं० श्रीधर** के बाद सच्चे और स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद का मार्ग हमारे काव्य-क्षेत्र के बीच चल न पाया, क्योंकि एक ओर उसी समय पिछले संस्कृत काव्य संस्कारों के साथ **पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी** हिन्दी साहित्य क्षेत्र में आये-जिससे इतिवृत्तात्मक पद्यों का खड़ी बोली में ढेर लगने लगा और दूसरी ओर **रवीन्द्र बाबू** की **गीतांजलि** की धूम मच जाने के कारण नवीनता प्रदर्शन के इच्छुक नये कवियों में से कुछ लोग तो बंग भाषा की रहस्यात्मक कवियों की रूपरेखा लाने में लगे, कुछ लोग पाश्चात्य काव्य पद्धति को 'विश्व-साहित्य' का लक्षण समझ उसके अनुकरण में तत्पर हुए इन बाधाओं के कारण इने-गिने नये कवि ही स्वच्छन्दता के स्वाभाविक पथ पर चले।''[1]

अतः **पं० श्रीधर पाठक** के काव्य से ही सच्चे और स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद का सूत्रपात माना जाता है। **पं० श्रीधर** तथा उनके समकालीन स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्यों में सीधी सरल भाषा, वनवैभव, एकान्त-प्रणय, सौन्दर्यप्रियता, अतीत प्रेम और देशभक्ति आदि स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख तत्त्व उन्मुक्त भाव से प्रकट हुए हैं।[2] वैयक्तिक विद्रोहभाव जो आगे चलकर छायावाद में विकसित हुआ, इन कवियों के काव्य में नहीं मिलता। इन कवियों की काव्य-सरिता में स्वच्छन्द धारा का प्रवाह गतिशील दृष्टिगत होता है। इस सम्बन्ध में **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** में उल्लेख किया है: ''इन कवियों में से अधिकांश दोरंगी कवि थे जो ब्रजभाषा में शृंगार, वीर, भक्ति आदि की पुरानी परिपाटी की रचना कवित्त, सवैयों या गेय पदों आदि में करते चले आ रहे थे और खड़ी बोली का प्रचार खूब बढ़ता दिखायी देता था और काव्य में प्रवाह के लिए कुछ नयी-नयी भूमियाँ भी दिखाई पड़ती थीं।''[3] अतः स्वच्छन्दतावाद के विकास की जब भी चर्चा होगी **पं० श्रीधर पाठक** का नाम सर्वप्रथम स्मरण किया जायेगा। वास्तव में **पं० श्रीधर पाठक** ही हिन्दी स्वच्छन्दतावादी साहित्य के जनक हैं। **पं० श्रीधर** के **अनुयायियों में पं० श्री रामनरेश त्रिपाठी** का नाम अग्रणी है। **पं० रामनरेश त्रिपाठी** की **'मिलन, पथिक,** और **स्वप्न** खण्ड काव्यों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ कल्पना व भावना के साथ मिश्रित हैं।''[4] 'कल्पना' व भावना दोनों ही स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ हैं अतः **पं० रामनरेश त्रिपाठी** ही सच्चे अर्थों में **पं० श्रीधर** के अनुयायी और पथ-बटोही हैं। **पं० रामनरेश** ने ही **पं० श्रीधर** की स्वच्छन्द काव्यधारा की परम्परा को आगे बढ़ाया तथा स्वच्छन्दतावाद के विकास में अपना परस्पर योगदान दिया।

पं० श्रीधर पाठक ने काव्य की स्वच्छन्द धारा की जो सरिता प्रवाहित की वह चरम परिणति को प्राप्त हुई **प्रसाद, निराला, पंत** तथा **महादेवी** की कविताओं में। **द्विवेदी-युग** में सरल भाषा को प्रयोग में लाया जाता था किन्तु भाषा की क्लिष्टता छायावादी काव्य में दिखायी दी। इस काव्य में प्रेम-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में स्पष्टता, खुलापन एवं अनुभूति की अभिव्यंजना भली प्रकार नहीं हो पायी है क्योंकि इस काल के कवियों के काव्यों में आध्यात्मिकता का आवरण पड़ा है, जिससे प्रेम-सौन्दर्य के वर्णन में कवि परम्परावश आगे नहीं बढ़ते। छायावादी कवियों के काव्य में अतिशय कल्पनाशीलता, भावुकता, व्यक्तिवादिता आदि प्रवृत्तियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 12
2. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक कविता : स्वच्छन्दतावादी उपलब्धियाँ, नागरी पत्रिका, जून, जुलाई,75*
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 38
4. वही, पृ० 66

छायावाद के बाद अनुभूतिपरक कवियों में **बालकृष्ण शर्मा 'नवीन,' हरिवंश राय 'बच्चन' रामधारी सिंह 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल, गोपाल सिंह 'नेपाली** एवं **आर० सी० प्रसाद सिंह** प्रमुख हैं। इन कवियों में प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति में सच्चाई के साथ-साथ निराशा व विद्रोह का स्वर एवं मानववादी स्वर मुखरित हुआ है।

छायावादी कविता के साथ-साथ प्रगतिवाद भी आगे बढ़ रहा था। छायावाद के क्रांतिकारी रूप का अगला चरण ही यह प्रगतिवाद था। रोमांटिक वृत्ति का तीव्र विरोधी किन्तु कला के स्तर पर अपने आपको पुष्ट न बना सका यही उसकी अल्पावधि का कारण भी था। लोक-संस्कृति और लोक-जीवन इस काल के कवियों का प्रिय विषय था। **पंत** की' **'ग्राम्या,' निराला** के **'बेला, नये पत्ते', केदारनाथ अग्रवाल** की **'युग की गंगा' त्रिलोचन शास्त्री** की **'धरती'** तथा **डॉ० रामविलास शर्मा** की कविताएँ इसका अत्यन्त सजीव उदाहरण हैं।

प्रयोगवादी कवियों के काव्य में रोमानी प्रवृत्ति विद्यमान है। **अज्ञेय** के **भग्न दूत** और **चिन्ता** में स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का बहाव स्पष्ट दिखायी देता है। **प्रभाकर माचवे** की कविताओं में भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। छायावादी काव्य के बाद व्यक्तिवाद जो प्रगतिवादी कवियों के काव्य से लुप्त हो गया था प्रयोगवाद में पुनः अस्तित्व को प्राप्त होता है किन्तु छायावादी व्यक्तिवाद से भिन्न अवस्था में यह प्रयोगवाद में पुनः प्रवेश करता है। यह व्यक्तिवादी भावना काव्य परिसर में नए विचार, नयी प्रेरणा और नयी अनुभूति लेकर हिन्दी में आयी थी और यही व्यक्तिवाद हमारी मानव-चेतना का प्राण था।

नयी कविताओं में जनजीवन तथा साधारण विषय भी कविताओं का प्रतिपाद्य बनने लगा है जो कि एक स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है। नयी कविताओं पर अंग्रेजी के रोमांनटिसिज्म का सीधा प्रभाव है। इस काल के कवि अपनी कविताओं के लिए **LyricalBallads** तथा **LiterariaBiographia** को ही आधार मानते हैं और उसी के आधार पर अपनी कविताएं सँवारते हैं। नयी कविता और नवगीतकारों के काव्यों में स्वच्छन्दतावादी और नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ दोनों ही प्रचुर मात्रा में अपने सघन रूप में दिखायी पड़ती हैं। इन कवियों में प्रमुख हैं- **अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण', धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, शमशेर बहादुर सिंह, जानकी बल्लभ शास्त्री, गिरिजाकुमार माथुर, शंभुनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, प्रेमशंकर** तथा **अशोक वाजपेयी**।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** का प्रारम्भिक योगदान महत्त्वपूर्ण है। **आचार्य शुक्ल** ने ही स्वच्छन्दतावाद शब्द को हिन्दी रूप दिया है। **आचार्य शुक्ल** ही वह सर्वप्रथम आलोचक हैं, जिन्होंने स्वच्छन्दतावाद को छायावाद के क्रम-अनुक्रम में विश्लेषित किया था। अपने **हिन्दी साहित्य के इतिहास** में सर्वप्रथम अंग्रेजी में रोमांटिसिज़्म को हिन्दी में 'स्वच्छन्दतावाद' के नाम से पुकारा तथा इसी क्रम में स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को विश्लेषित किया। **आचार्य शुक्ल** छायावाद को स्वच्छन्दतावाद की एक विकसित शैली मानते हैं।''[26] स्वच्छन्दतावाद के विश्लेषण और अनुशीलन के वे ही अग्रदूत माने जाते हैं। उनके प्रयासों के फलस्वरूप ही हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास का प्रारम्भ होता है।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 83

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने **'हिन्दी साहित्य के इतिहास'** का सर्वप्रथम छायावाद और स्वच्छन्दतावाद के पार्थक्य की ओर दृष्टि केन्द्रित कर ध्यानाकर्षण किया था। यही कारण था कि पं० **श्रीधर पाठक** को वे स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक और अग्रदूत मानते हैं तथा **पं० रामनरेश त्रिपाठी** को उनका अनुयायी। छायावाद को स्वच्छन्दतावाद की अनुकृति न मानकर उसका विकसित रूप मानना उनकी सोच का परिणाम है। अतः **आचार्य शुक्ल** ने छायावाद को स्वच्छन्दतावाद की विकसित शैली के रूप में विश्लेषित किया है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यद्यपि हिन्दी के स्वच्छन्दतावाद को विश्लेषित करने के लिए कोई पुस्तक नहीं लिखी किन्तु **डॉ० देवराज उपाध्याय** की पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** की भूमिका में स्वच्छन्दतावाद क्या है इस सम्बन्ध में उनका लेख हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों के समक्ष आज भी महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर चर्चा का विषय बना हुआ है। **डॉ० द्विवेदी** स्वच्छन्दतावाद को अपने युग की सम्पूर्ण चेतना और विचार-संघर्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में विश्लेषित करते हैं।[1] स्वच्छन्दतावाद को वह पुराने विचारों का नया नामान्तर मात्र न मानकर समविरोध की वस्तु मानते हैं। इस प्रकार उन्होंने 'स्वच्छन्दतावाद' को वैश्विक अवधारणा के रूप में विश्लेषित किया है साथ ही, वह उसका अन्य वादों से समविरोधी रूप भी विश्लेषित करते हैं। **डॉ० द्विवेदी** स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद को भिन्न तो मानते हैं किन्तु छायावाद को अंग्रेजी के रोमांटिसिज़्म से प्रेरित मानते हैं जो कि तर्कसंगत नहीं है। **डॉ० द्विवेदी** के शब्दों में "छायावादी काव्यधारा की प्रेरणा का मूलस्रोत अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कविता ही हो सकती है।"[2]

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी रोमांटिसिज्म में कल्पना के अविरल प्रवाह और घन संश्लिष्ट निविड़ आवेग दोनों की प्रधानता तथा दोनों की उपस्थिति को अनिवार्य मानते हैं। भले ही एक की कुछ अधिक प्रधानता हो या दोनों की बराबर किन्तु इन दोनों के अभाव में कविता रोमांटिक कविता का रूप धारण नहीं कर सकती हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय का हिन्दी स्वच्छन्दतावादी आलोचना के विकास में अनन्य योगदान है। की पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य -शास्त्र'** हिन्दी स्वच्छन्दतावादी आलोचना की प्रथम पुस्तक है जो हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के क्रमिक विकास की प्रथम कड़ी है। इसी पुस्तक की भूमिका के लिए **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** द्वारा लिखित लेख हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में मील का पत्थर है।

डॉ० देवराज उपाध्याय हिन्दी समीक्षा के एकमात्र समीक्षक हैं, जिन्होंने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-क्षेत्र में, पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्यों में मनोवैज्ञानिक चिन्तन-बिन्दुओं को अनुशीलन-विश्लेषण द्वारा अपनी समीक्षा में स्थान दिया है। यद्यपि उन्होंने आलोचनात्मक क्षमता का उपयोग कथा-साहित्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषणअ-अनुशीलन में लगाया था किन्तु अपनी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा की एकमात्र पुस्तक **'रोमांटिक साहित्श-शास्त्र'** में क्लासिकल व रोमांटिक अवधारणाओं को विश्लेषित कर, पाश्चात्य अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की स्वच्छन्दतावादी अवधारणाओं को मनोवैज्ञानिक

---

1. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, भूमिका, रोमांटिक साहित्य-शास्त्र, पृ० 4
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र, भूमिका,* : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 4

वैचारिकता प्रदान करते हुए अपने चिन्तन का विषय बनाया। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को मनोवैज्ञानिक वैचारिकता की दिशा में प्रवाहित कर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक नये आयाम पर विश्लेषित कर **डॉ० उपाध्याय** ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के लिए नवीन भूमिका तैयार की। उन्होंने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में, मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों को केंद्र में रखकर अपने चिन्तन से सींचा था, हरा-भरा किया था। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक नया आयाम देने के कारण हिन्दी-समीक्षा-संसार उनका आजीवन ऋणी रहेगा तथा हिन्दी स्वच्छन्दतावादी-मनोविश्लेषणात्मक समीक्षक के रूप में आपका नाम अग्रणी व स्मरणीय रहेगा।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में स्वच्छन्दतावादी सौष्ठववादी समीक्षक **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी** का विशेष महत्व है। **आचार्य वाजपे यी आधु निक साहित्यतथा आधु निक काव्य : रचना और विचार** में स्वच्छन्दतावाद को एक व्यापक फलक विश्लेषित किया है। स्वच्छन्दतावाद को **वाजपेयी जी** ने 'स्वच्छन्द काव्य-धारा' या स्वच्छन्दतावाद का ही नाम दिया है। स्वच्छन्दतावादी चिन्तन को छायावाद से इतर दशा की ओर उन्मुख करने में **वाजपेयी जी** का विशेष योगदान है। **आचार्य वाजपेयी** ने सागर विश्वविद्यालय में स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को लेकर काव्य तथा कथ्न-साहित्य, उपन्यास तथा हिन्दी नाटकों द्वारा स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से शोध की विभिन्न दिशाओं में स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया था। उन्होंने ही कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यास आदि में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का अनुशीलन विश्लेषण शोधपरक दृष्टि से हिन्दी में सबसे अधिक किया तथा करवाया। **आचार्य वाजपेयी** ने अपने चिन्तन में स्वच्छन्दतावाद पर छायावाद के प्रभाव को अस्वीकारा है। वह स्वच्छन्दतावाद को एक स्वतंत्र काव्यधारा मानते हैं, किसी अन्य धारा का प्रतिरूप अथवा प्रतिबिम्बित रूप नहीं। इस प्रकार उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को छायावाद से इतर दिशा में विश्लेषित कर स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में एक और कड़ी जोड़ी। हिन्दी-समीक्षा-संसार आपके इस सराहनीय कार्य के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

डॉ० नगेन्द्र ने भी स्वच्छन्दतावाद को परिभाषित एवं विश्लेषित किया, किन्तु अपने गम्भीर चिन्तन का विषय नहीं बनाया। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को 'रोमानी या रोमांटिक' से सम्बोधित किया। **डॉ० नगेन्द्र** प्रायः सभी काव्यों को मूलतः रोमानी ही मानते हैं इसी कारणचेतना का स्वच्छन्द उन्मेष ही सर्जन प्रतिभा का लक्षण है।''[1] कहते हुए उसे स्वच्छन्दतावाद का प्राणतत्त्व स्वीकार करते हैं। का मत है कि यह आवश्यक नहीं कि स्वच्छन्दतावाद का जादू किसी कवि अथवा आलोचक के सिर पर चढ़कर बोले किन्तु स्वच्छन्दतावाद उसकी अंतश्चेतना में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहता है। इस प्रकार **डॉ० नगेन्द्र** उसका मनुष्य की अंतश्चेतना से सम्बन्ध स्थापित करते हुए स्वच्छन्दतावाद को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में स्वाभाविक रूप प्रदान करते हैं।

डॉ० नगेन्द्र स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को अभिन्न मानते हैं। अपनी **आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ** नामक पुस्तक में इस संदर्भ में लिखते हैं ''इसमें संदेह नहीं कि छायावाद मूलतः

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, आमुख-डॉ० नगेन्द्र,* पृ० 5

रोमानी कविता है और दोनों की परिस्थितियों में भी जागरण और कुंठा का मिश्रण है।"[1] यदि देखा जाये तो के चिन्तन से स्वच्छन्दतावादी विकास को कोई आयाम तो नहीं मिल सका है। वह स्वच्छन्दतावादी समीक्षा की चर्चा-परिचर्चा में केवल सम्मिलित दिखायी देते हैं तथा एक चिर-परिचित पथ पर कुछ दूर तक चलते हैं किन्तु स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को कोई दिशा प्रदान नहीं कर सके।

डॉ० विनयमोहन शर्मा स्पष्ट रूप से छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को अभिन्न मानते हैं। अपनी पुस्तक **'साहित्यान्वेषण' में वह** लिखते हैं हमारा निश्चित मत है "छायावादी काव्य अंग्रेजी के **वर्डवर्थ, शेली, कीट्स, बायरनि, कॉलरिज** आदि के रोमांटिसिज्म से अधिक प्रभावित हैं।"[2] इस प्रकार उनके अनुसार छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से पृथक् नहीं किया जा सकता है। छायावाद पर अंग्रेजी के कवियों के प्रभाव को स्वच्छन्दतावाद की शृंखला के रूप में स्वीकारते हुए **डॉ० शर्मा** छायावाद और स्वच्छन्दतावाद की अभिन्नता की जोरदार वकालत करते हैं। वह आलोचकों के उसी दर से सम्बन्ध रखते हैं जो स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को सर्वथा अभिन्न मानते हैं। इसी कारण स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को नवीन पथ पर अग्रसर करने में सर्वथा असमर्थ दिखायी पड़ते हैं।

डॉ० देवराज 'छायावाद का पतन' में स्वीकारते हैं "छायावादी काव्य रोमांटिक काव्य से प्रभावित हुआ था और उसी से समानता भी रखता है।"[3] **डॉ० देवराज** छायावाद को आध्यात्मिक अथवा रहस्यवादी काव्य कहने की अपेक्षा रोमांटिक कहना अधिक समीचीन समझते हैं।[4] वह रोमांटिक काव्य से छायावादी काव्य को इतना प्रभावित और समान मानते हैं कि छायावादी काव्य को रोमांटिक काव्य ही कहना अधिक भाता है।

श्री सुमित्रानन्दन पंत स्वयं अपने काव्य को **शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ** तथा **टेनिसन** के काव्य से प्रभावित मानते हैं इस सम्बन्ध में वह कहते हैं-"पल्लव काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों-मुख्यतः **शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स** और **टेनिसन** से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन-युग का सौन्दर्यबोध और मध्यमवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है।"[5] किन्तु **'छायावाद का पुनर्मूल्यांकन'** में स्वच्छन्दतावाद को छायावाद से भिन्न करार देते हैं। यही नहीं, स्वच्छन्दतावाद का रूप उन्हें छायावाद के समक्ष अत्यन्त गौण लगता है तथा स्वच्छन्दतावाद से भी अधिक गम्भीरता आपको छायावादी काव्य में दिखायी देती है।

"छायावाद को रोमांटिक काव्य तक ही सीमित कर देना उसके मौलिक मूल्य के प्रति आँख मूँद लेना है किन्तु छायावादी कविता में इनसे कहीं अधिक गम्भीर, निगूढ़ तथा व्यापक तत्त्वें की प्रधानता है।"[6]

इस प्रकार पंत ने स्वच्छन्दतावाद को अत्यन्त सीमित बताकर उसके विकास को एक कदम

---

1. डॉ० नगेन्द्र : *आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ,* पृ० 20
2. डॉ० विनयमोहन शर्मा, साहित्यान्वेषण, पृ० 14
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 96
4. वही, पृ० 96
5. सुमित्रानन्दन पंत : *आधुनिक कविता,* पृ० 19
6. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 138

पीछे ही ढकेला है।

वर्तमान आधुनिक स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों में **डॉ० नामवर सिंह** का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को विस्तृत एवं व्यापक फलक पर विश्लेषित कर उसके विकास को गौरवपूर्ण आयाम दिया है।

डॉ० नामवर सिंह स्वच्छन्दतावाद को अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा बताते हुए उसके विस्तृत रूप को विश्लेषित करते हैं। उनके अनुसार रोमांटिसिज्म को 'रोमांटिसिज्म' न कहकर 'रोमांटिसिज्म्स' कहना अधिक समीचीन होगा क्योंकि कोई एक रोमांटिसिज्म था ही नहीं। चाहे **पन्त** हो अथवा **निराला** या **महादेवी** हों अथवा **प्रसाद** कोई भी समान, नहीं सभी एक दूसरे से अलग अत्यन्त भिन्न हैं। **समीक्षा ठाकुर** के संकलन एवं सम्पादन **"एक दशक की बातचीत नामवर सिंह के साथ"** तथा **'कहना न होगा'** में **डॉ० नामवर सिंह** के इन विचारों का उल्लेख मिलता है।

"यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा है। रोमांटिसिज़्म को रोमांटिसिज्म्स कहना चाहिए अर्थात् एक वचन नहीं बहुवचन, क्योंकि कोई एक रोमांटिसिज्म था ही नहीं। हिन्दी में ही देखें तो **पन्त** और **निराला** में बड़ा फर्क है। **प्रसाद, महादेवी, पन्त, निराला** सब अलग-अलग हैं। देखा जाये तो **निराला** का सौन्दर्य शास्त्र वही नहीं जो **पन्त** का था। कुछ बातें जरूर सामान्य हैं लेकिन बहुत-सी अलग भी हैं।"[1]

डॉ० नामवर सिंह स्वच्छन्दतावाद से छायावाद का कोई भी सम्बन्ध अथवा प्रभाव स्वीकारते नहीं है। वह तर्क भी देते हैं कि यदि छायावाद स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित होता तो **भारतेन्दु-काल** के कवियों पर इसका प्रभाव क्यों नही पड़ा। **वर्डसवर्थ, शेली** आदि के काव्य तो उस समय भी थे और **भारतेन्दु-काल** के कवि अंग्रेजी भाषा भी जानते थे। अपना यह मत व्यक्त कर उन्होंने छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को नितान्त भिन्न बताकर स्वच्छन्दतावाद को विस्तृत रूप प्रदान कर उसके विकास में अपना गौरवपूर्ण योगदान दिया।

स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को एक नवीन आयाम प्रदान करने का श्रेय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के **प्रो० अजब सिंह** को जाता है। हिन्दी समीक्षा-संसार के **प्रो० सिंह** ही वह प्रथम समीक्षक हैं, जिन्होंने **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** की तर्ज पर स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को व्यापक फलक पर विश्लेषित कर, स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को आगे बढ़ाया।

आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, स्वच्छन्दतावाद : छायावाद तथा **'नवस्वच्छन्दतावाद'** के माध्यम से **प्रो० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को एक व्यापक फलक पर किया है। हिन्दी में **आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी** की परम्परा - छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में किंचित् वैभिन्य को रेखांकित करके अध्ययन को जारी रखा है। इस प्रकार **डॉ० सिंह** ने स्वच्छन्दतावादी चिन्तन को एक नया आयाम दिया है। उन्होंने इस संदर्भ में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों को आधार लेकर स्वच्छन्दतावादी चिन्तन को अद्यतन रूप में मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। उनका विचार है कि स्वच्छन्दतावादी चिन्तन जीवन में परम्परा और रूढ़ियों से मुक्ति का संदेश देती है और यही काव्य की मोह चेतना भी है। अतः स्वच्छन्दतावादी चिन्तन परम्पराओं और रूढ़ियों से हटकर एक नवीन चिन्तन की रचना है। स्वच्छन्दतावादी चिन्तन अंग्रेजी के रोमांटिक आन्दोलन से प्रेरणा लेता है और

---

1. संपादन व संकलन समीक्षा ठाकुर : *कहना न होगा,* पृ० 110

विशुद्ध भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में इसकी प्रस्तुति होती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी चिन्तन काव्य का एक प्रकार नहीं वरन् काव्य की प्रवृत्तिनी है। **डॉ० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को अपने गम्भीर चिन्तन का विषय बनाया और इस स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को एक विशेष सिंहासन पर प्रतिष्ठापित किया। उनका यह प्रयास हिन्दी समीक्षन-संसार में एक प्रामाणिक एवं महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष के रूप में स्वीकृत भी हुआ है।

डॉ० अजब सिंह ने **'स्वच्छन्दतावाद : छायावाद'** ग्रन्थ के माध्यम से स्वच्छन्दतावाद : छायावाद को व्यापक फलक पर विश्लेषित किया है। स्वच्छन्दतावाद : छायावाद की अनेक भ्रान्तियों का निराकरण इस ग्रन्थ के माध्यम से होता है क्योंकि **डॉ० सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद और छायावाद के मध्य एक पार्थक्य रेखा खींच स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को एक नया आयाम दिया है। पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य एवं स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, स्वच्छन्दतावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदि के माध्यम से स्वच्छन्दतावादी छायावादी समीक्षा के विस्तृत अनुशीलन व विश्लेषण तथा उसे एक-दूसरे से पृथक रूप में देखने व विश्लेषित करने की प्रवृत्ति को बल देकर रुन्होंने **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** की समीक्षा-पद्धति को आगे बढ़ाया है। **आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ** ग्रन्थ के माध्यम से **डॉ० सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद को काव्य का प्रकार नहीं वरन् काव्य का तत्त्व बताकर उसे शाश्वत प्रवृत्ति कहा है जो किसी भी काल या देश के साहित्य में अभिव्यक्ति को प्राप्त होती है। स्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना क्रान्ति की भावना में निहित होती है। अतः हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी चिन्तन असहयोग आन्दोलन के रूप में अभिव्यंजित होता है। राष्ट्रीय चेतना को क्रांति की भावना से बल व नयी दिशा आहूत होती है और राष्ट्रीय भावनाओं का गुबार निकलता है स्वच्छन्दतावादी कविताओं के माध्यम से।

डॉ० अजब सिंह के इस महत्वपूर्ण प्रयास के पूर्व स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद सम्बन्ध तर्क-वितर्क, चर्चा-परिचर्चा तथा संगोष्ठियाँ इत्यादि होती रही किन्तु स्वच्छन्दतावाद और छायावाद के मध्य व्यवस्थित विभाजक रेखा खींचने के प्रयास का श्रेय्ध उन्हें ही जाता है।

'नवस्वच्छन्दतावाद' के माध्यम से **प्रो० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद के साथ यथार्थवाद का समन्वय कर **मार्क्सवादी** दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को व्यापक फलक पर विश्लेषित कर स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को विकसित किया। स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के विकास को एक नयी दिशा प्रदान कर, उसे एक नवीन क्षितिज की ओर अग्रसर कर हिन्दी समीक्षा को उच्चता की ओर ले गये।

हिन्दी समीक्षा के स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के नये सूत्र ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्रदान किया। **प्रोफेसर अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकसित रूप को 'नवस्वच्छन्दतावाद' नाम दिया है। उनका विचार है - ''स्वच्छन्दतावाद अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर जब दूसरी दिशा की ओर उन्मुख होता है और वह यथार्थवाद के साथ सहज मैत्रीभाव से नया रूप लेता है, यही नवीनता स्वच्छन्दतावाद को 'नवस्वच्छन्दतावाद' में परिवर्तित कर देती है।....... इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थवादी बोध के समन्वय से स्वच्छन्दतावाद नये रूप में उभरता है।''[1]

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, प्राक्कथन,* पृ० 8

महान स्वच्छन्दतावादी समीक्षक का विचार है कि "नवस्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन में कवि की चेतना फैंटेसी एवं सक्रिय कल्पना के पंख लिये होती है जो इसकी अपनी खास पहचान होती है।"[1] अपने गम्भीर चिन्तन के क्रम में **प्रो० सिंह** का मानना है कि "नवस्वच्छन्दतावाद सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक धरातलों की सीमा-रेखा में अपने को समेटता है तथा यथार्थवादी धरातल पर मानवीय अनुभूतियों को चित्रित करता है।"[2] नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल मूलतः स्वच्छन्दतावाद का मार्क्सवादी संदर्भ है।[3] **डॉ० नामवर सिंह** ने जिस क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद का आह्वान किया, **डॉ० अजब सिंह** ने उसे नवस्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के रूप में सम्बोधित किया है। स्वच्छन्दतावादी समीक्षक **प्रो० अजब सिंह** ने नवस्वच्छन्दतावाद को स्वच्छन्दतावाद के ही आधुनिक यथार्थवादी बोध से समन्वित नये रूप में ग्रहण किया है।[4] इस संदर्भ में **युंग, लुकाच, अर्न्स्टफिशर,** तथा **माइकेल** की नयी समाजवादी दृष्टि तथा भारतीय ऐतिहासिकता के माध्यम से, हिन्दी कविता के बदलते प्रतिमानों को ध्यान में रख, **युंग** के सामूहिक अचेतन के विस्तार का सहारा लेते हुए, स्वच्छन्दतावाद का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित किया है। लेखक स्वयं विस्थापित करता है कि हिन्दी छायावादोत्तर काव्य की सारी प्रवृत्तियों को 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से सम्बोधित करना चाहिए[5] क्यों कि आधुनिक कविता में स्वच्छन्दतावादी चेतना का स्पष्ट स्पन्दन दृष्टिगोचर होता है। इसका कारण शायद स्वच्छन्दतावादी कविता में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर है।

प्रोफेसर अजब सिंह केवल ग्रन्थ लिखकर ही नहीं वरन् पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर आलेख लिखकर भी स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के निरन्तर विकास का मार्गदर्शन करते रहे हैं। अधोलिखित आलेख इस संदर्भ में दर्शनीय हैं।

1. आधुनिक कविता : स्वच्छन्दतावादी उपलब्धियाँ, नागरी-पत्रिका, काशी, जून-जुलाई, 1975
2. हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का विकास, नागरी पत्रिका, काशी, अगस्त-दिसम्बर, 1975
3. लोक साहित्य का स्वच्छन्दतावादी आयाम, साहित्य धर्मिता, जौनपुर, दिसम्बर, 1986
4. विद्रोह और क्रांति : नवस्वच्छन्दतावादी संदर्भ, नई धारा, पटना, अक्टूबर-नवम्बर, 1986
5. आधुनिकता और नवस्वच्छन्दतावाद, नई धारा, पटना, अप्रैल-मई, 1988
6. काव्य का मनोवैज्ञानिक संदर्भ : नई धारा, पटना, दिसम्बर, 88 एवं जनवरी, 1989
7. मानववाद : नवमानववाद, निशान्त, अलीगढ़, जून, 1985
8. कामायनी की स्वच्छन्दतावादी अस्मिता, साहित्य धर्मिता, जौनपुर-दिसम्बर, 1990
9. छायावाद : स्वच्छन्दतावाद का सहज विकास, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की शोध-पत्रिका के लिए स्वीकृत आलेख।

डॉ० अजब सिंह ने न केवल अपने ग्रन्थों, आलेखों के द्वारा ही स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के विकास को नया आयाम दिया वरन् अपने निर्देशन में भी अनेक गम्भीर चिन्तन कार्य कराकर

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, प्राक्कथन,* पृ० 9
2. वही, पृ० 9
3. वही, पृ० 9
4. कैसर आफताब : *हिन्दी समीक्षा के विकास में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का योगदान- अप्रकाशित लघु शोध-प्रबन्ध,* पृ० 65
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 65

स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के विकास को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में **डॉ० अजब सिंह** के निर्देशन में स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से कई महत्त्वपूर्ण शोध कार्य हुए हैं। स्वच्छन्दतावाद और आधुनिक कविता को लेकर अधोलिखित शोध कार्य महत्त्वपूर्ण हैं जो **प्रो० अजब सिंह** के दिशा निर्देशन में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुके हैं।

1. छायावादोत्तर हिन्दी कविता : स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन : स्व० डॉ० वीरेन्द्र कुमार गुप्त, एम० ए० स्वर्णपदक प्राप्त, 1982

2. शिवमंगल सिंह सुमन के काव्य में स्वच्छन्दतावादी चेतना का मूल्यांकन : डॉ० मो० रशीद खाँ, 1983

3. कामायनी का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन : डॉ० कमलेश कुमारी, 1983

4. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल के काव्य का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन : डॉ० कुसुम लता शर्मा, 1986

5. धर्मवीर भारती के काव्य का स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से मूल्यांकन : डॉ० मोहम्मद इम्तियाज़ खाँ, 1990

6. नयी कविता का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन : डॉ० रेखा वर्मा

7. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का योगदान (एम० फिल्० की उपाधि के लिए प्रस्तुत) श्रीमती कैसर आफताब, 1994

स्वच्छन्दतावादी विकास के अद्यतन चरण का प्रयास है मेरा लघु शोध-प्रबन्ध "डॉ० देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि।"

इस अध्ययन के पश्चात् महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में मेरा पी-एच० डी० का कार्य है "हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम।"

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के विकास में स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद के समन्वय से नवस्वच्छन्दतावादी कला का विकास होता है। अतः वैश्विक स्तर पर नवस्वच्छन्दतावादी अवधारणा को विकसित एवं प्रतिष्ठित करने का श्रेय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को ही जाता है।

स्वच्छन्दतावादी चिन्तन को और अधिक विकसित रूप में देखने के लिए प्रयत्नशील **प्रो० अजब सिंह** आज भी स्वच्छन्दतावादी चिन्तन में साधनारत हैं। यही कारण है कि सागर विश्वविद्यालय के अलावा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में स्वच्छन्दतावादी चेतवा-क्रम में सबसे अधिक कार्य हुआ है और आज भी हो रहा है। **आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी** की परम्परा को विकसित करने में अपना महत्त्वूर्ण योगदान देते हुए **प्रो० अजब सिंह ने** हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों को अद्यतन वैचारिकता के परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी चेतना से जोड़कर, हिन्दी-समीक्षा को एक नया संदर्भ दिया है। मेरा निश्चित अभिमत है कि स्वच्छन्दतावाद पर अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ में व्यवस्थित कार्य हुआ है।

अतः स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का भी क्रमिक विकास हुआ है। सर्वप्रथम पूर्व

स्वच्छन्दतावादी, स्वच्छन्दतावादी तत्पश्चात् नवस्वच्छन्दतावादी जिसे **डॉ० नामवर सिंह** ने क्रांतिकारी नवस्वच्छन्दतावाद का नाम दिया और **डॉ० अजब सिंह** ने विस्तृत फलक पर विश्लेषित कर एक नवीन आयाम प्रदान किया।

आज **डॉ० नामवर सिंह** अन्तर्राष्ट्रीय स्वच्छन्दतावाद की बात करते हुए कहते हैं कि केवल एक रोमांटिसिज़्म था ही नहीं। अतः रोमांटिसिज्म को रोमांटिसिज़्म न कहकर रोमांटिसिज़्म्स कहना चाहिए अर्थात् एक वचन नहीं बहुवचन क्योंकि **निराला-प्रसाद, पन्त** सभी का रोमांण्टिसिज़्म अलग है। वहीं दूसरी ओर **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने स्वच्छन्दतावाद को अपने युग की सम्पूर्ण चेतना और विचार-संघर्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति कहकर उसे वैश्विक अवधारणा के रूप में विश्लेषित किया है। किन्तु मैं स्वच्छन्दतावाद को केवल अन्तर्राष्ट्रीय अथवा वैश्विक अवधारणा के रूप में ही नहीं वरन् इस ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण चिन्तन की कलात्मक अभिव्यक्ति मानती हूँ। आज यदि हम वैयक्तिकवाद की बात करते हैं तो स्वच्छन्दतावाद की बात करते हैं, यदि राष्ट्रीयतावाद की बात करते हैं तो स्वच्छन्दतावाद की बात करते हैं, यथार्थवाद की बात करते हैं तो स्वच्छन्दतावाद की बात करते हैं। यही नहीं, जब हम प्रकृतिवाद, अनुकृतिवाद तथा अध्यात्मवाद की बात करते हैं तब भी स्वच्छन्दतावाद ही की बात करते हैं। अतः स्वच्छन्दतावादी चिन्तन को केवल अन्तर्राष्ट्रीय या वैश्विक चिन्तन मानना मैं समझती हूँ स्वच्छन्दतावादी चिन्तन का क्षेत्र अत्यन्त सीमित कर देना है।

आज स्वच्छन्दतावादी चिन्तन का विकास नवस्वच्छन्दतावाद से भी अधिक और आगे की ओर बढ़ चला है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थ का समन्वित चिन्तन जब मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक चिन्तन से जुड़ एकरूपता को प्राप्त होता है तो वहाँ स्वच्छन्दतावाद अपने सहज रूप को प्राप्त होता है। आज इसे हम **सहज नवस्वच्छन्दतावाद** के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चिन्तन के रूप में भी इसे **सहज नवस्वच्छन्दतावाद** ही कहना अधिक समीचीन लगता है। यह मेरी स्वयं की मान्यता है कि स्वच्छन्दतावादी चिन्तन किसी युग का चिन्तन नहीं वह तो युगो-युगों से किसी-न-किसी रूप में इस जगत् में विद्यमान रहा है।

डॉ० देवराज उपाध्याय की परम्परावादी व स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि

परम्परावादी अवधारणा और डॉ० देवराज उपाध्याय

एलिजाबेथ युग के अन्तिम चरण में आकर लोगों का ज्ञान विकसित हो चुका था। लोग 'ज्ञान में ही शक्ति है' पर विश्वास करने लगे थे। जीवन के सत्यों को गम्भीर-से-गम्भीर व प्रौढ़-से-प्रौढ़ भाषा में अभिव्यक्त करते समय भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति कहीं लुप्त हो गयी थी और कवि कृत्रिमता का आश्रय प्राप्त कर चुके थे। कृत्रिम अलंकार, भाषा की झूठी सजावट, बनाव श्रृंगार यह सब चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। अतः अब आवश्यकता समझी गयी परिवर्तन की। **एलिजाबेथ युग** में इस अतिशय कृत्रिमता को रोकने तथा साहित्य में सादगी और स्वाभाविकता लाने के लिए क्लासिकल युग का प्रारम्भ तो हुआ पर परिणाम ठीक इसके विपरीत ही निकला। क्लासिकल साहित्य कृत्रिमता दूर रखने के स्थान पर स्वयं ही कृत्रिम अलंकार, भाषा की झूठी सजावट व बनाव श्रृंगार में उलझकर रह गया। वैसे क्लासिकल शब्द का अर्थ ही विशिष्ट, अद्वितीय और गम्भीर होता है। ऐसी वस्तु जिसकी समता संसार की कोई वस्तु न कर सके 'क्लासिक' ही कहलाती है किन्तु हम साहित्य की बात करते हैं तो, क्लासिकल से ''हमारा मतलब एक ऐसे काव्य से होता है जो अपनी महानता, ऊँचाई और गौरव में संसार के अन्य काव्यों को पीछे छोड़ जाता हो जिसकी छाया भर छू सकना भी अन्य काव्य के लिए कठिन हो।''[1]

रोमन और **ग्रीक** की श्रेष्ठ रचनाओं को क्लासिकल साहित्य की श्रेणी में रखा गया। इसके अतिरिक्त वह सभी रचनाएँ जो रोमन व ग्रीक रचनाओं के आदर्शों पर अथवा उनका अनुकरण मात्र करके सृजित की गयीं 'क्लासिकल साहित्य' परिवार में गिनी जाने लगीं। इस युग के प्रमुख विद्वान् थे **अरस्तू, होमर, विरीजल** और **हारेस**। क्लासिकल साहित्य का समय 1660 से लेकर लगभग 1800 तक माना जाता है।

''रोमन और ग्रीक श्रेष्ठ रचनाओं को क्लासिकल कहा गया। साथ-ही-साथ उनके आदर्शों को सामने रखकर उनके अनुकरण पर जिस साहित्य का सृजन होने लगा 1660 से लेकर 1798 तक इंग्लैण्ड में जो साहित्य का प्रवाह प्रवाहित होता रहा उसके सूत्र संचालन करनेवाले **होमर** थे, **विरीजल** थे, **हारेस** थे और सबसे ऊपर थे **अरस्तू**। इनके ही पदचिह्नों पर चलना काव्य की एकमात्र इति-कर्तव्यता समझी गयी। अतः इस युग के काव्य को क्लासिकल साहित्य कहते हैं।''[2]

अरस्तू एक महान् दार्शनिक और विचारक था। उसे पश्चिमी चिन्तन का स्रोत माना जाता है। पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र का वह आदि आचार्य कहलाता है। अरस्तू ने साहित्य-शास्त्र के जो आधारभूत सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, वही क्लासिकल साहित्य की विशेषताएँ भी हैं। यही वह क्लासिकल साहित्य की वे विशेषताएँ हैं जो इस साहित्य को अन्य साहित्य से पृथक् भी करती हैं।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 8
2. पृ० 8

अरस्तू के समय अन्य आलोचक भी अवश्य थे किन्तु वे या तो किसी की कृति की केवल अत्यधिक प्रशंसा करते थे अथवा केवल अत्यधिक निन्दा। ऐसा प्रतीत होता है कि सारी आलोचना उनकी पसन्द या नापसन्द पर निर्भर करती थी। इसका कारण शायद यही था कि आलोचना के कोई आधारभूत सिद्धान्त नहीं थे और यह सिद्धान्त प्रतिपादित किये **अरस्तू** ने।

सर्वप्रथम **अरस्तू** ने अनुभव किया कि किसी भी महान् कलाकृति में बाह्य आकार, रूप सौष्ठव, रूप संगठन इत्यादि सर्वत्र पाया जाता है अर्थात् किसी भी महान् कृति में कलापक्ष की ओर सभी का ध्यान रहता है। चाहे उसका भावपक्ष क्यों न निर्बल हो अथवा कवि भावपक्ष की ओर से उदासीन क्यों न हो किन्तु आंगिक रूप-विन्यास की ओर से वह कभी उदासीन नहीं रहा। अतः क्लासिकल साहित्य की सर्वप्रथम विशेषता यही है कि इस साहित्य में बाह्य रूप सौन्दर्य और आंगिक व्यवस्था का विशेष महत्त्व है अथवा अगर यूँ कहा जाये कि साहित्य का सृजन ही बाह्य रूप-विन्यास के लिए होता था तो असत्य नहीं। पुराने विषयों को इस प्रकार नवीन रूप प्रदान किया जाता था कि मानो वह नये विषय हों। पुरातन को नवीन रूप प्रदान कर नवजीवन देना इस साहित्य की प्रमुख विशेषता थी।

''सब कलाकृतियों में बाह्य आकार-प्रकार का सौष्ठव, रूप संगठन तथा अनुरूपता का ध्यान सर्वत्र रखा गया है। प्रत्येक महान् कलाकृति में चाहे और कुछ भी न हो पर इस रूप-विन्यास और आंगिक संगठन की ओर से उदासीनता कभी नहीं दिखायी गयी है।''[1]

तत्पश्चात् क्लासिकल साहित्य की दूसरी विशेषता **अरस्तू** ने बतायी अनेकत्व में एकत्व। प्रत्येक कृति में अनेक प्रकार की विषमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। कभी साहित्य में शिथिलता आती है तो कभी वेग, कभी उच्चता के दर्शन होते हैं तो कभी अत्यधिक गहराई दिखायी पड़ती है। इस प्रकार अनेक विषमताएँ साथ-साथ चलती रहती हैं किन्तु इनके अतिरिक्त प्रत्येक साहित्य में कुछ-न-कुछ बात अवश्य ही होती है जो इन सारी विषमताओं को एकता की डोर में बाँधे रहती है। इस एकत्व और अनेकत्व में ही क्लासिकल साहित्य की विशेषता है। इस सैद्धान्तिक दृष्टिकोण पर विचार करने पर किसी कला-कृति में बाह्य रूप-विन्यास मुख्य स्थान ग्रहण करता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि आलोचक भी कृति के बाह्य रूप-सौष्ठव व विन्यास के मोहपाश में बँध जाता है, रचना के अन्तस् में झाँकने की फुरसत ही नहीं होती। अतः यही अनेकत्व में एकत्व का सिद्धान्त क्लासिकल साहित्य का आधार है।

क्लासिकल साहित्य के आधारभूत सिद्धान्तों में इस बात का भी वर्णन है कि कविता के शब्द बहुत अधिक न हों, सीधी-स्पष्ट शैली का प्रयोग हो, भाव भी खूब अधिक आयें, व्यर्थ आडम्बरों को स्थान न मिले। एक ही बात को बार-बार न कहा जाये। अलंकार आयें किन्तु इतने अधिक न हों कि उनसे साहित्य में व्यर्थ का भार बढ़े अपितु अलंकारों का प्रयोजन इस प्रकार हो कि वे स्वयं काव्य के अन्तस से फूटते-से प्रतीत हों। कहने का तात्पर्य यह है कि अलंकारों का प्रयोग इस प्रकार नहीं होना चाहिए कि फटे हुए कपड़े का अवगुण ढँकने के लिए उसमें ऊपर के दूसरे कपड़े का पेबन्द लगा हो। कथावस्तु सरल, स्पष्ट व सीधी-सादी हो और उसमें अस्पष्टता व क्लिष्टता न हो।

''एकत्व ही क्लासिकल साहित्य का प्राण है। संकलन-त्रय सिद्धान्त से इस प्राण की रक्षा होती

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 8

है। साथ ही इसका यह भी तकाजा है कि जो कुछ कहा जाय थोड़े शब्दों में कहा जाय, वाक्य ऐसे हों जिनमें भाव कस-कस कर भरे गये हों, घुमा-फिराकर कहनेवाली शैली का, अनर्थक आडम्बरों की पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति का, पूर्णरूप से परित्याग हो। अलंकारों के व्यर्थ के भार से कविता भाराक्रान्त न की जाय, अलंकार आयें भी तो वैसे हों मानों वे स्वतः काव्य के अन्तस् से फूट पड़े हों, बाहर से चिपकाये जैसे न मालूम पड़ते हों। कथावस्तु यथासाध्य सीधी-सादी हो उसमें जटिलता न आने पावे।''[1]

एक प्रसिद्ध कहावत है कि कवि बनाए नहीं जाते वह तो स्वयं पैदा ही होते हैं अर्थात् ''Poet is born, not made.'' किन्तु क्लासिकल साहित्य के सिद्धान्तों ने तो विभिन्न प्रकार की कविताएँ करने के कुछ विशेष तरीके बताएँ हैं। Heroic, Epic, Pactoral तथा ejorgics काव्य के लिए विभिन्न तरीके बताये हैं। कुछ शब्दों में हेर-फेर कर आसानी से कविता लिखी जा सकती थी। यही कारण है कि क्लासिकल साहित्य में भावों की कमी थी। जो साहित्य स्व-मेव हृदय के अन्तस् की आवाज हो और जो साहित्य शब्दों की हेराफेरी से रचा गया हो उसमें कुछ-न-कुछ तो असमान्य और अमान्य दोनों ही होगा।

कहा तो यही जाता है कि Poet is born, not made पर क्लासिकल साहित्य के सिद्धान्तों ने ढोंगा पीटकर कविता ढालने का नुस्खा बतलाया। उसने बतलाया कि Heroic काव्य लिखना हो तो अमुक-अमुक छन्दों का और अमुक शब्दों का प्रयोग करो। इसी तरह Epic काव्य के लिए, Postoral काव्य के लिए तथा Ejorgics के लिए कुछ खास-खास नुस्खे और चुटकुले बताये गये हैं।[2]

किसी भी देश के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन की छाप उस समय के साहित्य पर अवश्य ही पड़ती है क्योंकि साहित्य ही समाज का दर्पण होता है। किंसी साहित्य को पढ़कर तत्कालीन विचारधारा का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है, यही कारण है कि तत्कालीन विचारधारा के प्रभावस्वरूप साहित्य का केवल भावपक्ष ही प्रभावित नहीं होता है वरन् साहित्य के बाह्य रूप संगठन व आंगिक व्यवस्था पर भी उसका विशिष्ट अनुकूल प्रभाव पड़ता है। क्लासिकल साहित्य में रूप-विन्यास रूप-संगठन व्यवस्था तथा आंगिक व्यवस्था की विशिष्टता में निश्सन्देह तत्कालीन विचारधारा का प्रमुख योगदान है। किसी भी साहित्य की बाहरी आकृति उस साहित्य के आन्तरिक दृष्टिकोण से प्रभावित होकर ही कोई राय ग्रहण करती है। क्लासिकल साहित्य में जो गौरव है, उद्यता है और अनुशासन के प्रति कड़ा रुख है उसी से उसका बाह्य रूप-सौष्ठव भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। क्लासिकल साहित्य ने जिस प्रकार और जिस रूप में अपने को अभिव्यक्त किया, उसके आन्तरिक दृष्टिकोण का यही तकाज़ा था।

''क्लासिकल साहित्य में रूप-सौष्ठव की महत्ता है, उसमें रूप-विधान के आनुपातिक सौष्ठव का आग्रह है, उसमें गौरव है, उद्यता है, अनुशासन की कड़ाई है तो इसलिए है कि वह एक ऐसे दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है जो अपने को उसी रूप में चरितार्थ कर सकता था।''[3]

प्रत्येक काव्य अथवा साहित्य तत्कालीन विचारधारा के अनुकूल रूप धारण करता है। क्लासिकल

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य शास्त्र,* पृ० 12
2. वही, पृ० 13
3. वही, पृ० 16-17

साहित्य भी तत्कालीन विचारधारा के अनुकूल रूप लिये हुए है। क्लासिकल साहित्य का प्रादुर्भाव ही तत्कालीन साहित्य में अतिशय कृत्रिमता के फलस्वरूप हुआ था। प्राचीन ग्रीक क्लासिकल साहित्य में तो अन्तस्थ प्रेरणाओं की माँगस्वरूप उस युग की ग्रीक भावनाओं की अभिव्यक्ति भी मिलती है किन्तु नवक्लासिकवाद उन लोगों के हाथ में पड़ गया था, जिसमें मौलिकता और प्रतिभा के प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं था। जीवन की ताजगी व सौन्दर्य के प्रति कोई प्रेम व आकर्षण नहीं था। अतः स्वाभाविक अभिव्यक्ति को तो जैसे जंग लग गया था। कृत्रिमता ने अपनी जड़ें फैलानी शुरू कर दी थीं। अतः आवश्यकता हुई एक बार फिर परिवर्तन की। उसी समय फ्रांस में क्रान्ति की लहर आयी जिसने अपने युग के साहित्य में भी क्रान्ति पैदा की। फलस्वरूप क्लासिकल साहित्य के प्रति विद्रोह के स्वर मुखरित होने लगे और परिणाम मिला 'रोमांटिक साहित्य' के रूप में। क्लासिक साहित्य का प्रचलन क्रान्ति की लहर में न जाने कहाँ लुप्त हो गया था।

स्वच्छन्दतावादी अवधारणा और डॉ० देवराज उपाध्याय

जब क्लासिकल साहित्य में बाह्य आडम्बर और कृत्रिमता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये तो एक बार पुनः परिवर्तन की ज्वाला भभकने लगी। शोलों को हवा दी फ्रांस की क्रान्ति ने। फ्रान्स की क्रान्ति ने ही उस समय जन-चेतना जागृत की, इधर दूसरी ओर वैज्ञानिक आविष्कारों ने आग में घी डालने का कार्य किया। विज्ञान के आविष्कारों ने मनुष्य के चिन्तन को अपने ढंग से परिवर्तित कर दिया था। वैज्ञानिक सभ्यता के फलस्वरूप मनुष्य ने बंधनों के बंधन को तोड़ा और इस प्रकार अनायास ही परम्परा की कड़ियाँ टूटती चली गयीं। मानव-जीवन में आये इस असीमित परिवर्तन ने मनुष्य में आत्म-प्रकाश उत्पन्न किया। मनुष्य ने स्वयं को पहचाना। क्रान्ति की इस लहर से साहित्य-जगत् भी किस प्रकार अछूता रह पाता? अतः साहित्य-क्षेत्र में भी इस क्रान्ति ने पैर पसारे तथा विद्रोह और परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न की। इस आन्दोलन ने जन-चेतना को तेजी से जागृत किया, मनुष्य में आत्म-चेतना के भाव से आत्म-प्रकाश उदित हुआ। फलस्वरूप वैयक्तिक स्वतंत्रता को बल मिलने लगा। अतएव परम्परा और कड़े अनुशासन की बेड़ियाँ अनायास ही स्वमेव टूटती चली गयीं। अपनी समस्त जीवनी शक्ति और काव्य-समृद्धि के साथ उमड़ पड़ा एक स्वच्छन्द साहित्य जिसे आज रोमांटिक साहित्य कहा जाता है।

यह रोमांटिक साहित्य रूपी एक ऐसा प्रकाश था जिसकी चमक से यूरोप, फ्रांस, जर्मन और इंग्लैण्ड सब-के-सब उदीप्त हो उठे और जिसकी चमक आज भी साहित्य-जगत को दीप्तमान किये हुए है। इसकी चमक पाठकों की आँखों में आज भी शीतलता प्रदान करती है।

डॉ० देवराज उपाध्याय भी रोमांटिक कविता की उत्पत्ति का श्रेय फ्रांस की क्रान्ति को ही देते हैं। फ्रांस की क्रान्ति से परोक्ष प्रभाव ग्रहण करती हुई कविता अन्ततः स्वतः अभिव्यक्ति को प्राप्त होती है। **डॉ० उपाध्याय** का मत है कि रोमांटिक कविता तो स्वतः प्रसूत काव्य है। वह कवि की इच्छा-अनिच्छा और परिश्रम पर निर्भर नहीं है, न उसे तराशने और छाँटने की आवश्यकता है। वह तो कवि के अन्तस् से स्वतः ही उमड़ती है और कवि को अपने को अभिव्यक्त करने के लिए विवश कर देती है। कवि के हृदय में भाव उमड़-घुमड़कर हलचल पैदा करते हैं, प्रवाह अथवा आवेग का संचार होते ही कविता फूट पड़ती है- शब्दों की ढाल लेकर। यह कविता अपनी अभिव्यक्ति की भाषा स्वयं ही ले आती है। अनुशासन को ताक में रख, परम्परा को तोड़, एक विशिष्ट ढंग से यह कविता

अभिव्यक्त होती है। इस साहित्य की अभिव्यक्ति में प्रवाह है, गति है, गहराई है, स्वच्छन्दता है, विद्रोह है और अनुशासन की अवहेलना भी है। इस साहित्य में तो जो विद्रोह, आवेश, आवेग और स्वच्छन्दता इत्यादि पायी जाती है वह इस कारण है कि उस समय का जीवन-दर्शन अपने को इसी रूप में कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर सकता था और इसी प्रकार की अभिव्यक्ति में ही उसकी संतुष्टि थी।

"रोमांटिक साहित्य-शास्त्र में जो एक प्रवाह है, स्वच्छन्दता है, गति है, गहराई है, अनुशासन की अवहेलना है तो वह भी इसी कारण है कि जीवन की फिलासफी जो अपने को अभिव्यक्त करना चाहती है वह एक विशिष्ट ढंग की है, जिसे इसी रूप में प्रकट होकर संतोष हो सकता था।"[1]

डॉ० देवराज का मत है कि रोमांटिक कविता स्वतः प्रसूत काव्य है। कवि की इच्छा अनिच्छा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। रोमांटिक कविता स्वयं की अभिव्यक्त के लिए कवि को बाध्य कर देती है किन्तु इसके साथ-साथ **डॉ० उपाध्याय** कविता की उत्पत्ति के लिए एक प्रेरक शक्ति का होना मानते हैं। यह कवि के अन्तस् में विद्यमान रहती है। जब कवि एकान्त अथवा शान्ति के क्षणों में हृदय के किसी शक्तिशाली अथवा प्रबल भावों का पुनः स्मरण करता है तो कविता हृदय से उमड़ पड़ती है। अतः स्पष्ट है कि अन्य रोमांटिक कवियों के समान वह भी स्वतः प्रसूत प्रेरणा को ही रोमांटिक काव्य की जननी मानते हैं।

इस स्वतः प्रसूत प्रेरणा के लिए **डॉ० उपाध्याय** कल्पना, स्वप्रकाश, सहज प्रतिभा इत्यादि नाम सुझाते हैं। इसे वह 'शक्ति' का नाम देते हैं। एक ऐसी शक्ति जो कवि-हृदय में भावों का संचार करती है, वेदना उत्पन्न करती है और प्रेरित करती है हृदय के भावों को उमड़ने-घुमड़ने को। यही वेदना कवि के हृदय पर इस प्रकार चोट करती है कि कवि के अन्तर्मन से आह निकलती है और यही आह गान के रूप में अभिव्यक्ति को प्राप्त होती है। यह स्वतः प्रसूत वेदना जिसे वैयक्तिक अनुभूति भी कहते हैं कवि-हृदय पर अपना प्रभाव फैलाती हुई कवि को एक दिव्यलोक के दर्शन कराती है जहाँ केवल सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य है और तब कवि की यह अनुभूति कोयल की कूक के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वेदना की सृष्टि करती है।

रोमांटिक कविता की सृष्टि में स्वतः प्रसूत प्रेरणा के अन्य साथी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने **डॉ० उपाध्याय** की पुस्तक **'रोमांटिक साहित्त्व-शास्त्र'** की भूमिका में इसे 'निविड़ आवेग' का नाम दिया है। स्वतः प्रसूत प्रेरणा अथवा कल्पना तथा आवेग दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। हाँ, यह अवश्य है कि कभी कल्पना का पलड़ा भारी होता है तो कभी आवेग का, किन्तु एक की अनुपस्थिति में दूसरा अपंग है, अपूर्ण है। यही दोनों रोमांटिक काव्य के जन्मदाता हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय के अनुसार रोमांटिक कविता वैयक्तिक अनुभूति का परिणाम है। जब तक कवि स्वयं व्यक्तिगत रूप से किसी भी भाव, घटना अथवा दृश्य के प्रति वैयक्तिक अनुभूति नहीं रखेगा, कविता का सृजन नहीं कर सकेगा। जब तक कवि के स्वयं के हृदय में वेदना की अनुभूति

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 17

नहीं होगी तो फिर प्रवाह, आवेग और भावों की गड़गड़ाहट भी कहाँ जन्म ले सकेगी? कहाँ फिर हमें उस काव्य का दर्शन हो सकेगा जिसकी अभव्यक्ति के लिए कवि बाध्य हो जाय। अतः स्पष्ट है कि वैयक्तिक स्वात्रतं अनुभूति भी रोमांटिक काव्य का एक आवश्यक तत्त्व है। इतना अवश्य है कि वैयक्तिक स्वात्रतं अनुभूति कल्पना और आवेग के माध्यम से ही प्रकट होती है।

सार्वभौमिक सत्य का उद्घोष है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। कवि भी एक सामाजिक प्राणी है। अतः कवि पर सामाजिक परिवर्तन व सामाजिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। कवि का हृदय बड़ा कोमल होता है और इस कोमल हृदय के कारण वह सामाजिक आवश्यकताओं को समझते हुए भावुक मन से अपने हृदय की अनुभूतियों को बड़ी ही सुन्दरता से लेखनी में डुबो देता है। रोमांटिक कवि भी सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर ही वह काव्य का सृजन करता है। अतः उसके काव्य में वैयक्तिक अनुभूति के साथ ही उस युग की आत्मा की आवाज भी बोलती है। कवि की वैयक्तिक अनुभूति और युग के समवेत कण्ठस्वर की ध्वनि का परिणाम ही रोमांटिक कविता है। कवि ही युग व समाज की आत्मा की धड़कन व स्पन्दन की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुन सकता है और उसे अपनी वैयक्तिक अनुभूति के माध्यम से कविता रूपी माला में पिरो सकता है। अतः कवि ही अपनी कविता के माध्यम से तत्कालीन विचारधारा का सामूहिक रूप से प्रतिनिधित्व करता है। क्लासिकल साहित्य से रोमांटिक साहित्य तक की यात्रा इस बात का प्रमाण है कि इस आमूल परिवर्तन की चाह, कवि की वैयक्तिक अनुभूति और उस युग के समवेत कण्ठस्वर की ध्वनि ही है। इसी को यदि सृजनात्मक प्रेरक शक्ति का नाम दिया जाय तो शायद कुछ गलत नहीं होगा। यही कवि की अपनी विशिष्टता होती है। युग की आत्मा की आवाज कवि-हृदय को सर्वोत्तम साधन बनाती है और कवि की वाणी से ही अपना जयोच्चार कराती है। कवि अपने छोटे-से व्यक्तित्व में उस युग की आत्मा का भार लिये फिरता है। परिस्थिति और वातावरण के साथ-साथ पर्याप्त संदेश पाकर कवि की वाणी मुखरित हो उठती है क्योंकि अब यह उसका नैतिक और मौलिक कर्तव्य हो जाता है। इसके विपरीत **डॉ० उपाध्याय** का एक तर्क और भी है। वह कहते हैं कि जो कवि किसी अतीत युग की घटना को अपने काव्य का आधार बनाता है, जिसका उसको साक्षात् ज्ञान भी नहीं है केवल सुनी-सुनायी बातों में अपनी कल्पना का समावेश कर काव्य का सृजन करता है ऐसी स्थिति में उसकी वाणी में वह तेज और ज्योति किस प्रकार स्थान पा सकती है जो युगात्मक ध्वनि से दीप्त कवि की वाणी का शृंगार होती है।

डॉ० देवराज उपाध्याय के अनुसार वह काव्य ही रोमांटिक काव्य हो सकता है जो आन्तरिक सौन्दर्य और आन्तरिक चेतना की बात करे। इन्द्रियातीत काल्पनिक सौन्दर्य इस काव्य की मुख्य विशेषता है। यही विशेषता रोमांटिक काव्य और क्लासिकल काव्य का विभेदीकरण भी करती है। रोमांटिक कवि आँखें मूँदकर आन्तरिक सांसारिक सौन्दर्य का साक्षात्कार कराता है। काव्य के प्रमुख उद्देश्य के अनुरूप पाठक के हृदय को आनन्दोद्रेक किया जाय तो वहाँ परमानन्द के साथ-साथ आत्म-संतुष्टि भी प्राप्त होती है। यहाँ सौन्दर्य अपने बहुत्व स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण करते हुए भी एकत्व में लीन हो जाता है। आन्तरिक चेतना न हो अथवा आत्म जागृति के भाव न हों तो वह काव्य निर्जीव होता है। ऐसा **डॉ० उपाध्याय** का मत है। जिस काव्य के रसास्वादन से श्वास को गति न मिले, जिस काव्य के रसास्वादन से प्राण स्पन्दित न हों तथा जिस काव्य के रसास्वादन से आत्मा आनन्दित न हो वह काव्य रोमांटिक काव्य नहीं हो सकता। रोमांटिक काव्य ही वह काव्य है, जिससे श्वास को गति

मिलती है, मन की धड़कनें धक्-धक् की आवाज करती है और कभी-कभी तो यहाँ तक होता है साँस रोककर पाठक जिज्ञासा के साथ काव्य का रसास्वादन करता है तो शान्त वातावरण में दिल की धड़कने इस प्रकार शान्ति भंग करती हैं मानों शान्त सागर में किसी ने एक नन्हा-सा कंकड़ फेंक उसमें हलचल पैदा कर दी हो।

वही काव्य सौन्दर्यमयी हो सकता है, जिसमें भावों की गहराई हो, भावों की उद्यता हो तथा जो वास्तविकता पर निर्भर करता हो। यदि काव्य में उपर्युक्त तत्त्वों का सर्वथा अभाव होता है तो वह शब्दों का जाल ही होगा। जब काव्य में भावों की गहराई और उद्यता होती है तभी काव्य आत्मा को स्पन्दित कर सकता है। रोमांटिक कविता में यह सब विद्यमान है। यूँ तो क्लासिकल काव्य में भी रूप, रंग, सौष्ठव, बाह्य सुन्दरता है किन्तु यदि अभाव है तो आन्तरिक प्राण स्पन्दन का। जब काव्य में जिज्ञासा व रहस्यमयता नहीं होगी तो कौतूहल नहीं होगा जब कौतूहल नहीं होगा तो फिर आन्तरिक जीवन प्राण स्पन्दन कैसा? किन्तु कौतूहल को स्थूल रूप में नहीं वरन् स्थूल के सूक्ष्म रूप में देखना होगा। सस्ती रहस्यमयता रोमांटिक कवियों के लिए त्याज्य है।

डॉ० उपाध्याय का मत है कि इस स्वतःप्रसूत और कवि-हृदय से स्वमेव अभिव्यक्त हुई कविता अपनी अभिव्यक्ति की भाषा भी अपने साथ लाती है अर्थात् स्वाभाविक और स्वतःप्रसूत विचार उसी भाषा में अभिव्यक्त होते हैं जो मनुष्य के लिए स्वाभाविक हो। जिस भाषा का प्रयोग दैनिक रूप से किया जाता हो वही स्वाभाविक भाषा होती है, उसे हम आम बोलचाल की भाषा भी कह सकते हैं। इस भाषा में कृत्रिमता नहीं होती और कृत्रिमता रोमांटिक कविता के पास फटक भी नहीं सकती। सरल और सीधे शब्द ही पाठकों के हृदय में गहराई तक उतर सकते हैं। यही भाषा भावों की गहराई और भव्यता को पाठकों के हृदय-खण्ड से संयुक्त कर देने के लिए समर्थ हो सकती है वहीं दूसरी ओर भाषा की तड़क-भड़क, आलंकारिकता और कृत्रिमता पाठकों के ध्यान को इधर-उधर भटका देती है, जिससे वर्ण्य-वस्तु का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और फिर कविता उसी प्रकार हो जाती है जैसे अधिक पानीवाला शर्बत, है तो शर्बत किन्तु मिठास केवल नाममात्र को। अतः काव्य में साधारण सुलभ भाषा का ही प्रयोग होना चाहिए।

डॉ० देवराज उपाध्याय के अनुसार रोमांटिक कविता की सामान्य विशेषताएँ

कहा जाता है कि कविता कोई आसमान से टपकी हुई वस्तु नहीं है। वह तो अपने अन्दर सदैव नवीनता ग्रहण करती है तभी तो आज उसका समृद्धिशाली रूप हमें देखने को मिलता है। रोमांटिक कविता भी कोई दैविक उपहार नहीं है। वह आज जिस रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित है निश्चय ही वह युगों की देन है। आज रोमांटिक कविता हमारे सम्मुख उपस्थित है तो वह क्लासिकल कविता की ही देन है। यदि क्लासिकल कविता न होती तो रोमांटिक कविता भी न होती। अतः रोमांटिक कविता की उत्पत्ति का श्रेय भी क्लासिकल कविता को ही जाता है। यह दूसरी बात है कि रोमांटिक कविता क्लासिकल कविता के प्रति विद्रोह व प्रतिक्रिया का परिणाम है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। यही कारण है कि जब कोई भी आन्दोलन हुआ तो उसका सीधा प्रभाव उस काल के साहित्य पर पड़ा है। जर्मन रोमांटिक आलोचक तो यहाँ तक मानते हैं कि

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 23

कविता में केवल कवि की वैयक्तिक आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति नहीं होती, उसमें केवल कवि के आत्मदर्शन की झलक नहीं मिलती बल्कि कवि के माध्यम से उस युग की आत्मा (Spirit of the age) बोलती है। उसमें युग के समवेत कण्ठस्वर की ध्वनि सुनायी पड़ती है।[1]

रोमांटिक कविता में भी उस युग की आत्मा (Time Spirit) के दर्शन होते हैं। क्लासिकल कविता के प्रति विद्रोह इस बात का प्रमाण है कि उस युग में समाज आमूल परिवर्तन चाहता था। समस्त बंधनों को तोड़, स्वच्छन्द विचरण उसकी कामना थी।

रोमांटिक कविता अपने अन्दर उन गुणों को समन्वित किये हुए है जो जोश, शक्ति, व्याकुलता, विद्रोह, क्षुब्धता, उत्तेजना, स्वच्छन्दता आदि भावनाओं के वशीभूत है। रोमांटिक कविता की विशेषताओं पर **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने अपनी पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य -शास्त्र'** में विस्तृत चर्चा की है।

कल्पना तत्त्व

रोमांटिक कविता की सर्वप्रथम विशेषता है 'कल्पना तत्त्व'। कल्पना तत्त्व को **डॉ० देवराज उपाध्याय** 'आन्तरिक प्रेरणा' का नाम देते हैं। यह आन्तरिक प्रेरणा ही स्वतःप्रसूत वेदना है। इसके लिए कवि को परिश्रम नहीं करना पड़ता न ही वह कवि की इच्छा पर निर्भर है। वह तो कवि के अन्दर स्वयं उमगती है, उमड़ती है और कवि को अपने वशीभूत कर उसे अपनी अभिव्यक्ति के लिए विवश कर देती है। यह 'आन्तरिक प्रेरणा' रोमांटिक कविता का मूल है। यह कविता की जननी है। इस स्वतःप्रसूत आन्तरिक प्रेरणा के अभाव में तो कोई भी कविता जन्म ले ही नहीं सकती है।

वर्ड्सवर्थ ने तो यहाँ तक कहा है:–

"Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity." "अर्थात् प्रबल वेगवती भावनाओं की स्वाभाविक उमड़न ही कविता का रूप धारण करती है और प्रशान्त क्षणों में स्मृत मनोवेगों से ही इसकी उत्पत्ति होती है।"[1]

प्रबल वेगवती भावनाओं की स्वाभाविक उमड़न कुछ नहीं अपितु कवि की आन्तरिक स्वतः-प्रसूत प्रेरणा है जो अन्ततः स्वतः ही कविता का रूप धारण कर प्रस्फुटित होती है। यह प्रेरणा कुछ नहीं वरन् कवि के अन्तःकरण की आवाज होती है।

निविड़ आवेग

कल्पना के साथ-साथ रोमांटिक कविता का एक अस्त्र और है आवेग। आवेग भी इस काव्य का प्रधान तत्त्व है। यह सदैव कल्पना के साथ उपस्थित रहता है। कल्पना के अविरल प्रवाह में आवेग की प्रधानता होती है। कभी-कभी कल्पना आवेग को दबोच लेती है और कभी आवेग कल्पना को। कभी दोनों समान रूप से आते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि कल्पना व आवेग, इन दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। आवेग कल्पना के अभाव में उत्पन्न हो ही नहीं सकता। कल्पना का अविरल प्रवाह ही आवेग को जन्म देता है।

वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रबलता

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 121

रोमांटिक कविता क्लासिकल कविता के विद्रोहस्वरूप उत्पन्न हुई थी। क्लासिकल कविता में सामूहिकता को अधिक महत्त्व दिया किन्तु रोमांटिक कविता में वैयक्तिक स्वातंत्र्य को अधिक महत्त्व दिया गया। सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में योग्य व्यक्तियों व स्वाधीनता का महत्त्वपूर्ण योगदान है। स्वभावतः कोई भी व्यक्ति दुराचारी नहीं होता। यदि उसको व्यक्तिगत स्वाधीनता दे दी जाय, और सभी नियम अनुशासन की कड़ाई समाप्त कर दी जाये तो व्यक्ति के चरित्र व उसकी बुद्धि दोनों में ही अद्वितीय अपूर्व उन्नति होगी। वैयक्तिक स्वातंत्र्य के विकास से ही शब्द का विकास सम्भव है। यही कारण है कि रोमांटिक कविता वैयक्तिक स्वातंत्र्य पर अधिक बल देती है।

नियम व बंधन के प्रति विद्रोह

रोमांटिक कविता तो प्रत्येक नियम व बंधन के परे है। वह तो बन्धनों को तोड़ देने का आह्वान करती है। कोई नियम बंधन वह नहीं मानती। किसी भी अनुशासन में रहना उसे सह्य नहीं। यदि रोमांटिक कविता नियम व बंधन में बंध जाय तो वह अपना स्वच्छन्द रूप ही खो बैठेगी और अन्ततः क्लासिकल हो जायगी।

''इस श्रेणी की कविता में किसी तरह के बंधन की पाबंदी असह्य है। प्रत्येक कवि अपनी मौलिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए अनुरूप पथ-निर्माण के लिए स्वतंत्र होगा।''[1]

कवि स्वयं ही अपनी अभिव्यक्ति के लिए पथ-निर्माण करेगा। किसी नियम या बंधन को नहीं मानेगा। वह स्वयं नियम बनायेगा और स्वयं ही उसे तोड़ेगा क्योंकि किसी भी बँधन में बंधकर वह स्वतंत्र अभिव्यक्ति से वंचित रह जायगा और जब तक वह नियमों का अवलोकन करेगा स्वतःप्रसूत वेदना का आवेग, जो क्षणिक होता है न जाने कौन-सी राह लेगा। रोमांटिक कविता मर्यादा, नियम, प्रतिबंध सब की अवहेलना करके तथा सभी प्रतिबन्धों व परम्पराओं को किनारे रख अपने लक्ष्य तक पहुँचने को उतावली रहती है।

आत्मगौरव की भावना

रोमांटिक कविता की एक विशेषता यह है कि इस कविता में आत्म-गौरव की भावना सर्वत्र पायी जाती है। रोमांटिक कविता व्यक्ति प्रधान होती है। अतएव आत्म-गौरव की भावना इस कविता की प्रधान विशेषता है। यही प्रवृत्ति इसे आन्तरिक चेतना की ओर भी उन्मुख करती है।

अदम्य प्रेरणा, उत्साह और उमंग

रोमांटिक कविता के लिए कोई भी बंधन असह्य है वह उन्हें छिन्न-भिन्न कर देना चाहती है। अदम्य प्रेरणा, उत्साह और उमंग रोमांटिक कविता के अंतस्थल को उभारती है।

यथार्थवाद रोमांसवाद की सार-वस्तु

रोमांटिक विचारधारा कृत्रिमता, असत्यता और झूठ का विरोध करती है। स्वाभाविकता और यथार्थता तो रोमांटिक काव्य का सार है, विशुद्ध अनुकरण का रोमांटिक काव्य में कोई स्थान नहीं किन्तु काव्योचित अनुकरण या सत्यता रोमांटिक काव्य का प्राण है।

प्रकृति वर्णन

रोमांटिक कविताओं में प्रकृति का व्यंजनात्मक वर्णन होता है। कुछ वर्णनात्मक कविताओं को

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 24

भी स्थान मिला है। रोमांटिक कवि प्रकृति पर सरसरी दृष्टि डालकर केवल उसका बाह्य रूप-आकर्षण अपनी लेखनी में कलमबन्द नहीं करता वरन् वह तो प्रकृति के अन्तः में प्रवेश कर उसे आत्मसात् कर बड़ी तन्मयता व आत्मीयता से उसका वर्णन करता है। उसका यह वर्णन केवल वर्णन नहीं है वरन् प्रकृति की दिव्यता की ओर संकेत है। प्रकृति के रहस्यों की ओर संकेत हैं। रोमांटिक काव्य को 'प्रकृति काव्य' कहा जाय तो अनुचित नहीं। रोमांटिक कवि केवल मनोरंजन के लिए प्रकृति-वर्णन नहीं करता वरन् वह तो प्रकृति के क्रिया-कलापों को इस प्रकार अपनी लेखनी में डुबो देता है कि मानों हम साक्षात् प्रकृति के दर्शन कर रहे हों। हमारे हृदय में गति उत्पन्न कर कल्पना-क्षेत्र का उद्‌घाटन कर सृजन के कार्य में लगा देना यही कार्य है रोमांटिक कविता का।

'प्रशांत सरोवर में एक कंकड़ी पड़ जाने से जिस तरह तरंग-चक्र की सृष्टि हो जाती है उसी तरह इस कविता से उत्तेजित होकर पाठक अनन्त की कल्पना में व्याप्त हो जायगा।''[1]

आध्यात्मिकता की ओर झुकाव

रोमांटिक साहित्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस समय के कवियों के काव्यों में आध्यात्मिकता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। रोमांटिक कवि प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिकता से मण्डित कर देता है वह हुस्ने बुतां के परदे में रब का जलवा देखने की बात करता है। बूँद में बाडव का दाह देखता है। उसके लिए ब्रह्माण्ड ही पिण्ड है। रोमांटिक कवि स्थूल में सूक्ष्म का दर्शन करता है। वह विविध लीलाओं की डोर हिलानेवाले इस जगत् के सूत्रधार की खोज करता है।

जीवन-दर्शन का पुट

प्रत्येक रोमांटिक कवि दार्शनिक भी होता है। उसे जीवन-दर्शन के गम्भीर सिद्धान्तों का ज्ञान रहता है और उन्हीं को वह सुबोधतर रूप में देने की कोशिश करता है। एक दार्शनिक होने के नाते रोमांटिक कवि सृजन-व्यापार और तद्‌गत मानसिक अवस्था तथा हृदय की गहराई के उस बिन्दु तक पहुँचने की कोशिश करता है जहाँ से सृजन कार्य आरम्भ होता है।

कविता के पात्र

रोमांटिक कविता के पात्र शहर के रहनेवाले नहीं होते वरन् सुदूर ग्राम अथवा प्रकृति में विचरण करनेवाले होते हैं। यह पात्र ऐसे होते हैं कि इनका जीवन प्राकृतिक रूप से प्रकृति के अंचल में व्यतीत होता है। जीवन की भीड़-भाड़ व कृत्रिमता से दूर होते हैं। **डॉ० उपाध्याय** मानते हैं कि ''फैशन और सभ्यता तो मनुष्य के जीवन में कृत्रिमता ला देती है। प्रकृति को महत्त्व देनेवाले काव्य में उनकी पूछ ही कैसे हो सकती है?''[2]

डॉ० देवराज उपाध्याय कहते हैं कि ''ऐसी कविता में वैसे ही पात्रों का वर्णन विशेष रूप से होगा जिनका जीवन शहर की भीड़-भाड़ से दूर प्रकृति के अंचल में प्राकृतिक रूप से व्यतीत होता हो। ऐसे मनुष्यों के विचार, रहन-सहन के ढंग प्रकृति से ही अनुप्रमाणित होते हैं।''[3]

साधारण शैली का प्रयोग

स्वतःप्रसूत वेदना उमड़-घुमड़कर प्रवाह गति को प्राप्त हो कविता के रूप में प्रस्फुटित होती है।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 25
2. वही, पृ० 24
3. वही, पृ० 24

यहाँ कृत्रिमता का कोई स्थान नहीं। स्वतः स्वाभाविक रूप से हृदय से प्रस्फुटित भाषा-शैली साधारण दैनिक व्यवहार के शब्दों से परिपूर्ण होती है तभी उसमें सजीवता आ सकती है, उसमें एक अपील होती है जो कृत्रिम भाषा में नहीं। रोमांटिक कविता की शैली का यही रूप है, यही उसकी विशेषता है । इस कविता में क्लासिक युग की कृत्रिमता, तड़क-भड़क व अलंकृत भाषा का सर्वथा अभाव होता है।

"शैली की सादगी होगी, दैनिक व्यवहार में प्रयोग होनेवाली शब्दावली के प्रति आग्रह होगा, भाषा निरलंकृत होगी। क्लासिक युग की Poetic diction की तड़क-भड़क का अभाव होगा क्योंकि ऐसे श्रेणी के कवियों का सिद्धान्त यह है कि स्वाभाविक स्थिति में हृदय से निकली भाषा में जो सजीवता और अपील होगी वह कृत्रिम भाषा में नहीं हो सकती।"[1]

रोमांटिक कविता का कला-पक्ष

रोमांटिक कविता में स्वाभाविक अभिव्यक्ति पर अत्यधिक बल दिया जाता है किन्तु यदि यह समझा जाय कि कला का रोमांटिक कविता में कोई स्थान नहीं है, ऐसा नहीं है। इसमें कला स्वतः-प्रसूत भावों में सुचारुता लाने के उद्देश्य से प्रयोग की जाती है, बल्कि अगर यूँ कहा जाय कि स्वयं ही प्रकट हो जाती है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि रोमांटिक कविता कला के लिए नहीं अपितु कला रोमांटिक कविता के लिए होती है।

"रोमांटिक कहलाने के लिए किन-किन गुणों का होना आवश्यक है यह कहना कठिन है। पर असाधारणता, विशालता, अतिशयता तो है ही। रोमांटिक साधारणता सतहीपना, चलतापन, छुटपुटपन से कभी-कभी सन्तुष्ट नहीं होता, उसे कोई बड़ी चीज (Big thing) चाहिए जहाँ उसे अपनी 'बयाँ ' के लिए वसयत मिल सके। वहाँ पर tea cup tragidies की बात नहीं चल सकती।[1]

रोमांटिक कविता में गीति और मुक्तक काव्यों की प्रधानता

डॉ० देवराज उपाध्याय अपनी पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य -शास्त्र'** में लिखते हैं कि रोमांटिक कविता में प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा गीति काव्य व मुक्तक काव्यों की प्रधानता है। इसका कारण उन्होंने बताया है कि रोमांटिक कविता के लिए आन्तरिक प्रेरणा की परम अपेक्षा है। इस कविता के लिए जिस तरह की प्रेरणा की आवश्यकता होती है वह क्षणिक मात्र है। इस क्षणिक प्रेरणा से काव्य में चमक बनी रहती है अर्थात् उनके अनुसार स्वच्छन्दतावादी कवि काव्य के सारे बन्धन छिन्न भिन्न करता है, वह तो स्वच्छन्द विचरण चाहता। छन्द के बंधन में पड़कर वह अपनी अभिव्यक्ति पर अंकुश नहीं चाहता है। यदि वह काव्य की इस परम्परा को नहीं तोड़ पाया तो फिर स्वच्छन्दतावादी कवि रहा ही नहीं। फिर एक दूसरी बात भी है जो **डॉ० उपाध्याय** बार-बार कहते हैं कि रोमांटिक कविता कवि की स्वतःप्रसूत आन्तरिक वेदना की अभिव्यक्ति है। वह तो स्वतः अभिव्यक्त होती है जबरन अभिव्यक्त करायी नहीं जाती। जो कविता स्वतः अभिव्यक्त होगी वह किस बन्धन को नहीं मानेगी क्योंकि वह तो उन्मुक्त काव्य होगा, उसकी उन्मुक्तता व स्वच्छन्दता अपनी अलग पहचान बनाती है। लोगों के हृदय पर अपनी छाप छोड़ती है और पाठक उसकी कविता में तो जैसे रम जाता है, उसको बार-बार पढ़ता है और कभी भी भूल नहीं पाता।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 24
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *ग्रन्थावली खण्ड-* 2, पृ० 351

यही कारण है कि रोमांटिक कविता किसी भी पद्य छन्द के चक्कर में नहीं पड़ती न ही किसी अलंकार की योजना उसकी योजना होती है। कोई भी रोमांटिक कविता किसी छन्द-विशेष अथवा अलंकार-विशेष के लिए नहीं कही जाती अपितु अलंकार-छन्द इत्यादि का तो कभी-कभी लेश मात्र अंश भी नहीं होता। कभी-कभी तो इस प्रकार अभिव्यक्ति हो जाती है मानो कोई गद्य हो।

रोमांटिक कविता में जो आन्तरिक प्रेरणा कार्य करती है वह क्षणिक होती है और वह इतनी क्षणिक होती है कि प्रबन्ध काव्य की प्रतीक्षा नहीं कर सकती। इतने समय में तो कवि का हृदय इस स्वतःप्रसूत वेदना से अभिभूत प्रवाह कवि को कहाँ-से-कहाँ अपने साथ बहा ले जायगा। उसका वेग कवि को कहीं ठहरने का अवसर ही कब देता है? यह लावा तो शब्दों के माध्यम से जाने कब फूट पड़े यह तो स्वयं कवि का हृदय भी नहीं जानता? यह कविता व्यक्ति, स्वातंत्र्य की बात करती है। उसके अन्दर विद्रोह है, किसी प्रकार का बन्धन उसे सह्य नहीं।

संगीतात्मकता भी रोमांटिक कविता में प्रचुर मात्रा में पायी जाने लगी। **डॉ० देवराज उपाध्याय** के अनुसार, ''जब से रोमांटिक स्वच्छन्दतावादी कविताओं का बोलबाला प्रारम्भ हुआ, तब से गीति काव्य की महत्ता बढ़ी और उसी के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन प्रारम्भ हुआ। जो कृति या रचना गीतिकाव्य के आदर्शों का जिस अनुपात में सफलतापूर्वक पालन कर सकती थी, उसे कला और साहित्य में आदरणीय समझा जाने लगा।''[1]

रोमांटिक कविता का जीवन के प्रति दृष्टिकोण

डॉ० देवराज उपाध्याय अपनी पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य -शास्त्र'** में मानते हैं कि रोमांटिक काव्य का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बड़ा ही व्यापक है। वह जीवन के साधारण-से-साधारण और व्यापक-से-व्यापक सत्य को इस प्रकार जन मानस के सम्मुख अभिव्यक्त करती है कि वह प्रत्येक के लिए ग्रहणीय तत्पश्चात् प्रेषण योग्य हो जाते हैं। यह अलग बात है कि उनकी अभिव्यक्ति का ढंग भिन्न हो और इसी भिन्नता लिये हुए प्रेषित किया गया हो। भिन्न-भिन्न प्रकार की कविताएँ ही इस भिन्न अभिव्यक्ति का कारण हो सकती हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय यह भी मानते हैं कि कवि जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी रखता है। वह प्राकृत वस्तुओं की रूपरेखा क्रिया-कलापों एवं बाह्य आवरूप का सूक्ष्म निरीक्षण करता है! फिर वह प्रकृति व मनुष्य के सम्बन्ध में कुछ साधारण धारणाएँ बना अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है, उसे काव्योचित अभिव्यक्ति देने की चेष्टा में, सौन्दर्य व प्रभाव लाने के लिए उसे नये ढंग से प्रकाशित करता है जिससे वह काव्य आनन्द उत्पन्न करे, उस साहित्य के प्रति पाठक प्रेम-दृष्टि रखें और उससे लाभ उठायें।

कवि, सत्य को प्रकृति और जगत् के बीच प्रतिष्ठित करके देखता है। कवि का मस्तिष्क अतिसंवेदनशील अति प्रतिक्रियाशील हो सकता है कि वास्तविकता से सम्पर्क होते ही सत्य उसके मानस-पटल पर इस प्रकार उग आता है मानो उसकी दिव्य दृष्टि के नेत्र खुल गये हों और वह सत्य का साक्षात्कार कर रहा हो। ऐसे दूसरी तरह के संवेदनशील कवि होते हैं। प्राकृत वस्तु की वेदना

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *ग्रन्थावली खण्ड*- 2, पृ ०58

उनके हृदय को बेध देती है। भाव स्वतः ही हृदय से स्रोत रूप में उमड़ते हैं और फिर अभिव्यक्ति के अनुरूप भाषा लेकर प्रस्फुटित होते हैं। **डॉ० देवराज** कहते हैं, ''सत्य की आन्तरिक ज्योति अपनी अभिव्यक्ति की भाषा साथ लिये आती है। गान आह से निकलता है और आँखों से निकलकर कविता चुपचाप बह जाती है। इस मनोवृत्ति से प्रसूत कविता रोमांटिक़ कविता होगी। इसमें उमड़न होगी, वेग होगा, प्राणों की व्याकुलता होगी, पर्वतों को गिरा देने की शक्ति होगी, स्वच्छन्दता होगी और सबसे बड़ी चीज होगी कवि की आन्तरिक प्रेरणा जो प्रत्येक महान् कविता का मूल तत्त्व है और जिसके बिना कविता की रचना नहीं हो सकती। इस कविता में बोधातीत सत्य के प्रति संकेत होगा। इसमें दार्शनिकता का पुट होगा। इस नामरूपात्मक जगत् की विविध लीलाओं के पीछे छिपकर बैठे हुए डोर हिलानेवाले सूत्रधार की खोज होगी, यह कविता रहस्यवाद लिये हुए होगी, प्रत्येक आश्चर्यजनक साहसिक कार्यों के प्रति इसमें आग्रह होगा अतीत की गौरवगाथा के प्रति दिलचस्पी होगी।''[1]

अतः स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावाद की क्रान्ति केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं रह गयी थी बल्कि मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्र में इसने अपने पाँव पसारे। मनुष्य ने प्रत्येक क्षेत्र में अपने विचारों, क्रिया-कलापों में परिवर्तन की आवश्यकता को समझा। यही कारण था कि उसने प्रत्येक बंधन, नियम, अनुशासन और रीति-रिवाज, परम्परा व ढंग सभी में परिवर्तन व स्वच्छन्दता की आवश्यकता को समझा। मनुष्य के अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् दोनों में ही स्वच्छन्दतावाद की क्रांति ने अपना काम कर दिखाया। विज्ञान की उन्नति, विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कार, औद्योगिक क्रांति, ग्राम से शहर की ओर पलायन, वहीं दूसरी ओर अर्थशास्त्र व समाजशास्त्र जैसे नये विषयों को पढ़ाया जाना दर्शन-शास्त्र का शुद्ध बुद्धि तर्क तथा विज्ञान का ऐन्द्रियता को सर्वे-सर्वा मानना सभी ने मनुष्य के जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया। किन्तु उपर्युक्त सभी बातें स्वच्छन्दतावाद की क्रांति के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुईं। अतः स्वच्छन्दतावाद का जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण अत्यधिक व्यापक है। स्वच्छन्दतावाद वैयक्तिक स्वतंत्रता का पक्षधर है। यही कारण है कि प्रत्येक पुरातन नियम कानून के प्रति विद्रोह की भावना लेकर यह अग्रसर होता है।

यथार्थवादी दृष्टिकोण एवं जीवन के प्रति परिवर्तित नूतन दृष्टिकोण की सवारी रोमांस के रथ पर चढ़कर, जीवन के पथ पर निकली तो धीरे-धीरे परिस्थितियों के बीच सारा दृश्य ही बदल गया, अथवा यों कहिये कि परिवर्तित होने की विवशता उत्पन्न हो गयी। रथ की वही सामग्री, पहिये वैसे ही थे, अश्व भी वही, बागडोर भी वही पर वाहक बदल गया था। उसके विचार दूसरे थे, वह किसी दूसरे ही उद्‌देश्य से यात्रा के लिए निकला था।''[2]

परम्परावादी व स्वच्छन्दतावादी अवधारणा तथा डॉ० देवराज उपाध्याय

कोई भी कविता जीवन के व्यापक तथ्यों को अभिव्यक्त करती है और उसकी अभिव्यक्ति इतनी विशिष्ट होती है कि वह प्रत्येक के लिए ग्रहणीय बन जाती है। वह जीवन की सच्चाई को विशिष्ट ढंग से अभिव्यक्त करती है। कविता कई विशिष्ट प्रकार से अपने को अभिव्यक्त कर प्रेषणीय बनाती हैं और इस अन्तर का कारण भिन्न प्रकार का हो सकता है।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 19
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *ग्रन्थावली खण्ड-* 2, पृ० 247

रोमांटिक साहित्य क्लासिकल साहित्य के प्रति विद्रोह के फलस्वरूप आया। अतएव रोमांटिक साहित्य व क्लासिकल साहित्य में पर्याप्त विभिन्नता के दर्शन होते हैं। **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने अपनी पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य -शास्त्र'** में इस विषय पर गम्भीरता से विचार किया है।

क्लासिकल साहित्य में रूप-सौष्ठव की महत्ता है, उसमें रूप-विधान के आनुपातिक सौष्ठव का आग्रह है, उसमें गौरव है, उच्चता है, अनुशासन की कड़ाई है, तो इसलिए है कि वह एक ऐसे दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति है जो अपने को उसी रूप में चरितार्थ कर सकता था। रोमांटिक साहित्य में जो प्रवाह है, स्वच्छन्दता है, गति है, गहराई है, अनुशासन की अवहेलना है तो वह भी इसी कारण है कि जीवन की वह फिलासफी जो अपने को व्यक्त करना चाहती है एक विशिष्ट ढंग की है, जिसे इसी रूप में प्रकट होकर संतोष हो सकता था।'[1]

साहित्य के भावपक्ष और विभाव अर्थात् Substance और form दो पक्ष होते हैं। क्लासिकल साहित्य में विभाव अर्थात् form का अधिक महत्व है। क्लासिकल साहित्य में बाह्य रूप-विधान आनुपातिक होता है। काव्य-सौष्ठव को अधिक सराहा जाता है। इस काव्य में काव्य के नियमों के प्रति कड़ाई और अनुशासन है। यह काव्य गम्भीर व शांत है। यही कारण है कि इस साहित्य में गौरव व उच्चता है।

रोमांटिक साहित्य की प्रवृत्ति चंचल है। उसमें आँधी और तूफानों का बोलबाला है। इस साहित्य में प्रवाह है, वेग है अतः स्वच्छन्दता है। इस साहित्य में एक गति है यही कारण है कि यह साहित्य किसी नियम या कानून में कहीं बँध नहीं सकता है और यह साहित्य स्वच्छन्द विचरण करता हुआ अनुशासन की अवहेलना करता है। विद्रोह इस साहित्य का मूल स्वर है। यह साहित्य व्यक्ति स्वातंत्र्य की बात करता है। व्यक्ति की स्वतंत्र अनुभूति कल्पना और आवेग के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है और जब वह भाषा के माध्यम से प्रकट होती है तो अनुशासन, नियम, नीति, सदाचार किसी से भी उसका सामंजस्य नहीं हो पाता। मन का यह आवेग क वि को रुकने का अवसर ही नहीं देता वह तो बस हर बंधन को तोड़ता प्रवाहित ही होता रहता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जीवन के साधारण सत्य अथवा तथ्य के अधिक ग्रहणीय और प्रेषणीय बनाने के लिए उसे नवीन परिस्थितियों के तहत नये ढंग से प्रकाशित किया जाता है कि यह सर्वज्ञात साधारण तत्त्व नवीन प्रतीत होता है। इसका महत्त्व इसमें नहीं है कि यह व्यक्ति की व्यक्तिगत अनुभूति की दिव्यता या विशिष्टता को प्रकट करती है वरन् इसका सौन्दर्य और महत्त्व इसमें है कि यह किस प्रकार अभिव्यक्त की ज़ा रही है। इसी परम्परा में **डॉ० देवराज उपाध्याय** का कथन है कि इस कविता को किस कौशल और किस ढंग से सजाया गया है कि वह परिधित होते हुए भी नवीनतम है। इसी तथ्य की जाँच की जाती है क्योंकि इस प्रकार का साहित्य कलासाध्य होगा, परिश्रमसापेक्ष होगा। इस तरह का साहित्य कवि के हृदयरस में लेखनी डुबोकर नहीं लिखा जायगा। अतः यह साहित्य परम्परावादी क्लासिकल साहित्य होगा। यथार्थवाद के समीप, दैनिक जीवन में आनेवाली और दिखलायी पड़नेवाली और चीजों को नये ढंग से सजाकर रखनेवाली कविता होगी।

किन्तु इसके विपरीत रोमांटिक कवि का मष्तिष्क अत्यधिक संवेदनशील और प्रतिक्रियाशील

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 17

हो सकता है। जब वह वास्तविकता के सम्पर्क में आता है तो सत्य उसके मानस पटल पर इस प्रकार अंकित हो उठता है मानो उसकी दिव्य दृष्टि के नेत्र खुल गये हों, वह सत्य से हूबहू साक्षात्कार करता है। प्रकृत वस्तु के प्रति उसकी प्रतिक्रियाशीलता का भाव इतना तत्वपरक होता है कि प्रकृत वस्तु की वेदना उसके हृदय को भेदती है। यह अनुभूति स्वतःप्रसूत वेदना के रूप में उसके हृदय के अन्तर्मन पर प्रवाहित होती है तथा एक अदम्य प्रवाह व वेग भाषा के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। यह कविता रहस्यवाद से परिपूर्ण, दार्शनिकता का पुट लिये, आश्चर्यजनक और साहसिक कार्यों के प्रति स्वच्छन्दता से पूर्ण, प्राणों की आकुलता लिए और पर्वतों को गिरा देने की शक्ति लिये होगी।

डॉ० देवराज उपाध्याय अपनी पुस्तक **रोमांटिक साहित्य-शास्त्र** में इस विभिन्नता को और अधिक स्पष्ट करते हैं। **डॉ० उपाध्याय** के अनुसार-

"रोमांटिक और क्लासिकल साहित्य में विभिन्नता दिखलायी पड़ती है। वह बाह्य रूप विधान की उतनी नहीं जितनी वह स्पिरिट की, दृष्टिकोण की तथा प्रेरणा की है। एक के लिए पिण्ड ही ब्रह्माण्ड है, दूसरे के लिए ब्रह्माण्ड ही पिण्ड है। एक में सामूहिकता का आग्रह है तो दूसरे में वैयक्तिकता पर जोर। बाह्य इन्द्रिय-ग्राह्य चाक्षुष सौन्दर्य एक के लिए प्रधानवाद है तो दूसरे के लिए इन्द्रियातीत काल्पनिक सौन्दर्य। एक आँखें खोलकर बाह्य संसार की झाँकी करता है और कराता है तो दूसरा आँखें मूँदकर आन्तरिक संसार के सौन्दर्य की झाँकी करता है और कराता है। एक में मनुष्य की प्रतिष्ठा है वह नरकाव्य है तो दूसरा प्रकृति के गौरवगान में संलग्न है वह प्रकृतिकाव्य है। एक कहेगा:-

Man Superior walks,

Amid the glad creations.

-Thomson Spring

तो दूसरा कहेगा:-

To me the meanest flower that blows can give thoughts that do after lie too deep for tears.

–Wordsworth.

डॉ० उपाध्याय यह मानते हैं कि क्लासिकल साहित्य और रोमांटिक साहित्य में जो अन्तर है उसकी नींव अत्यधिक गहराई में है। यह अन्तर संस्कृति का अन्तर है। प्रत्येक राष्ट्र या प्रदेश की संस्कृति वहाँ के साहित्य को प्रभावित करती है। वहाँ की जलवायु, मिट्टी अथवा यों कहिए कि भौगोलिक स्थिति भी उस राष्ट्र के साहित्य को प्रभावित करती है। क्लासिकल साहित्य की उत्पत्ति भूमध्यसागर के तट पर बसे प्रदेशों में हुई थी। वहाँ का वातावरण शांत है। वहाँ की जल-तरंगों में हलचल नहीं होती। अतः यदि क्लासिकल साहित्य की उत्पत्ति भूमध्यसागर तट पर होती है तो कोई आश्चर्य नहीं कि क्लासिकल साहित्य में गम्भीरता के दर्शन हों, इतिवृत्तात्मक सौन्दर्य की प्रधानता हो। वह साहित्य शुद्ध सौन्दर्य से ही संतुष्ट हो जाय और सौन्दर्य के This worldliness पर बल दे।

दूसरी ओर रोमांटिक साहित्य-शास्त्र की उत्पत्ति उत्तरी महासागरों के तट पर बसे प्रदेशों में हुई थी। उत्तरी महासागरों का वातावरण बड़ा ही चंचल है। वहाँ आँधी और तूफान की अत्यधिकता

है। यदि ऐसे स्थानों पर रोमांटिक साहित्य की उत्पत्ति होती है तो यह साहित्य अगर अपने में प्रवाह, वेग, प्राणों की व्याकुलता, विद्रोह की भावना, स्वच्छन्दता, प्रकृति-प्रेम, आध्यात्मिकता, दार्शनिकता, साहसिक कार्य करने की शक्ति, पर्वतों को गिरा देने की शक्ति आदि गुण रखता है तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

'**स्कॉटजेम्स** ने अपनी पुस्तक "**The making of Literature**" में क्लासिकल रोमांटिक साहित्य पर विचार करते हुए कहा है:

"The one seeks alwyas a mean the other an extremity. Repose satisfies the classic. Adventure attracts the Romantic. The One appeals to tradition, the other demands the novel. On one side we may find the virtues and defects which go with the nation of fitness, propriety, measure, restraint, conservatism authority, calm experience, comeliness; on the other those which suggested by exitement, energy, restlessness, sprituality, curiosty, troublousness, progress liberty, experiment, provocutiveness.

अर्थात् एक सदा मध्यम मार्ग की खोज में रहता है, दूसरा अति की, क्लासिक को शान्ति पसंद है। रोमांटिक को साहसिकता आकृष्ट करती है। एक परम्परा की ओर देखता है दूसरे में नूतनता की चाहना होती है। एक के पक्ष में वह सब गुण और दोष आ सकते हैं, जिनका सम्बन्ध चुस्ती, औचित्य, सन्तुलन, संयम, गतानुगतिकता, अनुशासन, शान्ति, अनुभव के साथ है। दूसरे पक्ष में उन गुण और दोषों का समावेश है जो आवेश, शक्ति, आकुलता, आध्यात्मिकता, कौतूहल, प्रक्षुब्धता, प्रगति, स्वातंत्र्य, प्रायोगिकता और उत्तेजकता की भावनाओं के साथ-साथ चला करते हैं।[20]

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 21

डॉ० देवराज उपाध्याय की दृष्टि में पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवि

डॉ० देवराज उपाध्याय ने रोमांटिक काव्य शास्त्र के कोई मूलभूत सिद्धान्त स्वयं नहीं अपितु पाश्चात्य रोमांटिक कवियों के माध्यम से प्रतिपादित किया है। जहाँ तक मेरा अपना विचार है अपनी पुस्तक **रोमांटिक साहित्य -शास्त्र** में उनका उद्देश्य रोमांटिक काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करना था भी नहीं किन्तु हिन्दी साहित्य ज्ञान भण्डार में पाश्चात्य रोमांटिक काव्य-शास्त्र सिद्धान्त व साहित्य शास्त्रीय विचारधारा को संकलित कर भारतीय साहित्य को और अधिक समृद्धिशाली बनाना था । अपनी पुस्तक **रोमांटिक साहित्न-शास्त्र** में, 'अपनी बात' शीर्षक के अन्तर्गत वह अपनी इस परम इच्छा को व्यक्त करते हैं। साथ ही वह प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी से आशा करते हैं कि वह उनकी इस परम इच्छा को कार्यान्वित करेगा।

अरस्तू से लेकर **क्रिस्टोफर काडवेल** तक न जाने कितने साहित्यशास्त्रियों ने कविता, साहित्य और काव्य को न जाने कितने विविध रूपों में समझने और समझाने का प्रयत्न किया है जो हमारे लिए मनन और विचार-संकेत-ग्रहण का आधार हो सकता है। यह आवश्यक है कि हम उन्हें पढ़ें, उनका मनन करें और उन पर भारतीय रोशनी का पानी फेरकर उसे और भी समृद्ध करें। समय आ गया है कि हमारे हिन्दी की चिन्ता में घुल घुलकर मरनेवालों और हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान इस ओर जल्द-से-जल्द आकृष्ट हो और कुछ इस ओर क्रियात्मक पद उठाया जाये। इसमें थोड़ी-सी भी शिथिलता अक्षम्य अपराध होगी।[1]

लोगों की अंग्रेजी साहित्य के प्रति बढ़ती उदासीनता ने **डॉ० देवराज उपाध्याय** को झकझोर कर रख दिया था। उनका मानना था कि यदि यह उदासीनता इसी प्रकार बढ़ती चली गयी तो इसके बड़े ही गम्भीर परिणाम हिन्दी साहित्य को भुगतने पड़ सकते हैं। अंग्रेजी साहित्य में जो कुछ भी उच्चकोटि की चिन्तनसामग्री है, वह हमसे सदा के लिए लुप्त हो सकती है और यह क्षति भारतीय राष्ट्रीय जीवन के लिए अपूरणीय होगी। यदि हम अंग्रेजी साहित्य की समृद्धि की ओर से उदासीन हो जायँ तो इसमें हिन्दी साहित्य का भला नहीं है। यदि पारस्परिक विचारों के आदान-प्रदान का साधन टूट जाये तो जो क्षति भारत को उठानी पड़ेगी वैसी इंगलिस्तान को नहीं। इसका कारण यह है कि भारतीय मस्तिष्क ने अब तक जो कुछ सोचा और साहित्य रूप में सुरक्षित रख छोड़ा है वह अनुवाद के रूप में या संकलन के रूप में अंग्रेजी साहित्य को समृद्धिशाली बना रहा है किन्तु हमारे देश में लोग इस प्रवृत्ति के प्रति उदासीन हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय की इस परम इच्छा और उनकी भावनाओं का आदर करते हुए यहाँ पर रोमांटिक कवियों के शास्त्रीय सिद्धान्त उनके विचार मनन सहित प्रस्तुत हैं। यहाँ **एडिसन, लेसिंग, रस्किन** को भी स्थान दिया जा रहा है जो सर्वथा उचित है। क्योंकि, "**एडिसन** और **लेसिंग** उस समय के कवि थे जब क्लासिकल विचारधारा से चिन्तन रोमांस की ओर मुड़ रहा था, **रस्किन** उस समय का प्रतिनिधित्व करते हैं जब रोमांस की बाढ़ में उतार आ चला था।"[2]

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 1-2
2. वही, पृ० 4

डॉ० देवराज उपाध्याय, विलियम वर्ड्सवर्थ और उसके द्वारा प्रतिपादित किये गये काव्य-सिद्धान्तों से सर्वाधिक प्रभावित हैं। यही कारण है कि **लिरिकल बैलेड्स** की भूमिका को वह रोमांटिक काव्य का बाइबिल मानते हैं। इस ग्रन्थ से उन सभी सिद्धान्तों का ज्ञान होता है जो रोमांटिक काव्य के प्रधान आधार-स्तम्भ हैं।

''**लिरिकल बैलेड्स** की भूमिका को, Preface को हम रोमांटिक काव्य का बाइबिल कह सकते हैं।[1]

डॉ० देवराज उपाध्याय, कालरिज द्वारा उसकी पुस्तक **Biographia Literaria** में दिये गये आलोचना के मूलभूत सिद्धान्तों से भी अत्यन्त प्रभावित दिखते हैं। **कॉलरिज** द्वारा की गयी **वर्ड्स्वर्थ** की आलोचना की कसौटी को वह साहित्यालोचना की कसौटी मानते हैं। **डॉ० उपाध्याय** हिन्दी आलोचना के प्रति चिन्तित दिखायी देते हैं और हिन्दी आलोचकों से निवेदन करते हैं कि **कॉलरिज** की पुस्तक **Biographia Literaria** में प्रस्तुत **वर्डसवर्थ** की कविताओं के गुण-दोष विवेचन का अध्ययन अवश्य ही करें। **कॉलरिज** के यह सिद्धान्त इतने सरीखे व सटीक हैं कि **T. S. Eliot** ने **कॉलरिज** को विश्व का सर्वश्रेष्ठ आलोचक माना है। **डॉ० उपाध्याय** की दृष्टि में पाश्चात्य कवियों के काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार है –

डॉ० देवराज उपाध्याय और एडिसन

एडिसन उस काल के व्यक्ति थे जब चिन्तन-स्रोत क्लासिकल विचारधारा से रोमांटिक विचार के परिवर्तन की ओर अग्रसर था। यह समय रोमांटिक कविता का बाल्यकाल था। यह वह समय था जबकि परिवर्तन की ओर सबकी निगाहें लगी थीं। जो भी इस काल के कवि थे उनका कर्तव्य इस समय और अधिक बढ़ गया था कि वह इस परिवर्तन को रास्ता दिखायें, इस बाढ़ को ढाल दें। इसी समय के कवि **एडिसन थे**। इसके पूर्व **अरस्तू** ने काव्य के जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे वह इतने अधिक तर्कसम्मत, सर्वमान्य तथा दृढ़ स्थापित थे कि ऐसा लगता था कि वह काव्य के अन्तिम लक्ष्य हैं और अब इसके बाद काव्य-सिद्धान्त स्थापित नहीं किये जा सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि इसके बाद काव्य साहित्य-शास्त्र अब आगे उन्नति नहीं कर सकेगा। **अरस्तू** के ठोस अलंकारों की बाह्य रूप-रेखा में इतना आकर्षण था कि काव्य के अन्तस में देखने का उत्साह ही नहीं रहा यहाँ तक कि सर्वानन्दविधायिनी कविता के बारे में भी कोई शब्द न कहे जा सके। अतः अब ऐसे काव्य-सिद्धान्तों की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसमें काव्य साहित्य-सिद्धान्त की व्यापक सीमा के अन्तर्गत काव्य के अतिरिक्त विविध विधाएँ यहाँ तक कि प्रत्येक कलाकृति भी आ सके। **एडिसन** ही वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस प्रकार के काव्य-सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा का सबसे पहले प्रयत्न किया। अतः आधुनिक युग के सर्वप्रथम साहित्यशास्त्रियों में **एडिसन** का नाम अग्रणीय है।

एडिसन आधुनिक युग के आचार्य तथा आलोक-स्तम्भ **बेकन** के काव्य-सम्बन्धी विचारों से पूर्णतया प्रभावित हैं। इसके साथ-साथ वह अरस्तू द्वारा प्रतिपादित काव्य-सिद्धान्तों को नकार भी नहीं पाता। यहाँ तक कि **Paradise Lost** की आलोचना का आधार भी यही काव्य-सिद्धान्त हैं, किन्तु यदि वह कहीं इस मापदण्ड को असफल पाता है तो उसमें आवश्यकतानुसार लचीलेपन का समावेश कर उसे परिवर्तित कर देता है किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट कर देता है कि यहाँ सिद्धान्तों की शिथिलता

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 111

से काम नहीं चलनेवाला है। अतः परिवर्तन आवश्यक है।

साहित्य-शास्त्र सम्बन्धी विचारों के क्रम में **एडिसन** ने Wit, Judgement, Humour तथा Pleasure of imagination अर्थात् बुद्धि, कल्पना और कल्पना के आनन्द पर भी विचार किया है। उनके इन विचारों ने आधुनिक साहित्यालोचन-शास्त्र को एक दृढ़ व स्पष्ट दार्शनिक आधारभूमि दी है। **एडिसन** के अनुसार-"Wit मनुष्य की वह शक्ति है जो इस नाना रूपात्मक जगत् में परस्पर विरोधी दिखलायी पड़नेवाली वस्तुओं में से समानता के कुछ सूत्रों को पकड़ लेती है और उसके सहारे अपने मनोनुकूल चित्रों की सृष्टि कर देखने और दिखाने में प्रवृत्त होती है।"[1]

डॉ० उपाध्याय Wit के लिए हिन्दी में 'कल्पना' शब्द सुझाते हैं। **एडिसन** ने Wit या Humour को एक ही माना है। जब Wit में थोड़ा-सा हास्य समा जाता है तो वह Humour हो जाता है फिर एडिसन Wit या Humour को True, False तथा Mixed अर्थात् सच्ची कल्पना, कपोल कल्पना और मिश्रित कल्पना में विभक्त करते हैं। साधर्म्य पर आश्रित कल्पना सच्ची कल्पना, स्थूल सादृश्य पर आश्रित कल्पना कपोल कल्पना तथा साधर्म्य और सादृश्य दोनों पर आधारित कल्पना मिश्रित कल्पना की श्रेणी में आती है। **एडिसन** द्वारा False Humour की परिभाषा से **डॉ० उपाध्याय** पूर्णतः प्रभावित हैं। वह कहते हैं कि हिन्दी में उच्चकोटि के हास्य का सर्वथा अभाव है। पूरा लेख पढ़ जाइए यह ही समझ में नहीं आयेगा कि व्यंग्य बाण किस ओर चल रहे हैं। **एडिसन** ने **Essay on pleasure of imagination** में लिखा है कि प्रकृतवस्तु और कलावस्तु में अन्तर है। प्रकृतवस्तु हमारी इन्द्रियों के प्रभाव-क्षेत्र में आती है और उसी के सामने अपना प्रदर्शन कर समाप्त हो जाती है आगे नहीं बढ़ती। किन्तु कला-वस्तु इन्द्रियों के द्वार से मस्तिष्क तक पहुँचती है। वह विधायक कल्पना को भी प्रतिक्रिया के लिए बाध्य करती है क्योंकि इन्द्रियों के प्रति निवेदित न रहकर असल में इसकी अपील विशेषकर कल्पना के लिए होती है। इससे जो आनन्द प्राप्त होता है वह बिम्ब-ग्रहण के लिए आनन्द से मिलता-जुलता है। इससे **एडिसन** ने यह सिद्धान्त निकाला कि "उच्च-कोटि का काव्य या कला वस्तु वही हो सकती है, जिसमें बिम्ब-ग्रहण कराने की शक्ति कल्पना-घनीभूत रूप से वर्तमान हो।[2]

कल्पना के आनन्द के विषय में **एडिसन** का मत है कि, मनुष्य की समस्त ज्ञानेन्द्रियों की अनुभूतियाँ आनन्द देने में इसकी समता नहीं कर सकती हैं। यही इन्द्रिय कल्पना के सामने Ideas का जाल बुनती है। इससे उत्पन्न आनन्द ही कल्पना के आनन्द हैं। यह आनन्द पुनः दो श्रेणियों-प्राथमिक और द्वितीय में विभक्त है। साक्षात् चाक्षुष प्रतीति से उत्पन्न आनन्द प्राथमिक आनन्द या Primary Pleasure कहलाता है किन्तु जब चाक्षुष प्रतीति से उपलब्ध आनन्द पदार्थ आँखों से ओझल हो अपनी स्मृति अनेक रंगों और रूपों से सुसज्जित मानस-पटल पर छोड़ जाता है तो उससे प्राप्त आनन्द द्वितीय आनन्द या Secondary Pleasure कहलाता है। कला-वस्तु द्वितीय प्रकार के आनन्द की सृष्टि करती है। यही आनन्द काव्य का सर्वोच्च आनन्द है, ऐसा **एडिसन** का विचार है। कवि की वाणी से उद्दीप्त पाठक के मस्तिष्क में काम करनेवाली कल्पना के Secondary Pleasure के बारे में **एडिसन** कहता है:

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 84
2. वही, पृ० 48

"शब्दों के बंधन में बँधकर प्रकृत-वस्तु मानो बंधनरहित हो जाती है, निस्सीम हो जाती है, अपार शक्ति-समन्वित हो जाती है और हमारे हृदय को अनिर्वचनीय आनन्द से भर देती है। इसका कारण प्रकृत-वस्तु के निरीक्षण में उसका उतना ही रूप हमारी कल्पना में उग सकता है जो हमारी आँखों द्वारा गृहीत हो सकता है।"[1]

एडिसन ने ही अंग्रेजी को सर्वप्रथम सामाजिक चिन्तन का समर्थ और उचित माध्यम बनाया। उसने ऐसे गंध की नींव डाली थी जिसमें लेखक के व्यक्तित्व के प्रतिबिम्ब के साथ राष्ट्र के चरित्र और प्रतिभा का भी बिम्ब दिखायी दे। उसने विद्ववाणी को जनवाणी से मिलाया। दर्शन का समाजीकरण करना, उसे आम जनता तक सम्प्रेषित करना ही **एडिसन** की महत्त्वाकांक्षा थी। स्वयं **एडिसन** ने अपनी इस महत्त्वाकांक्षा के बारे में लिखा है :

"कहा जाता है कि **सुकरात** ने दर्शन को देवताओं के स्वर्ग से उतारकर साधारण मनुष्यों के बीच ला प्रतिष्ठित किया। मेरी महत्त्वाकांक्षा यही है कि लोग जब मेरी चर्चा करें तो यह कहें कि मैंने दर्शन को बन्द कोठरियों, पुस्तकालयों और कालेजों से निकालकर क्लबों में, सभाओं में, चाय और कॉफी-गृहों में ला खड़ा किया।"[7]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **एडिसन** ने साहित्य-शास्त्र में परिवर्तन की परम्परा की नींव डाली और साहित्यिक आलोचना चिन्तन को एक स्पष्ट व सुदृढ़ आधारभूमि दी।

डॉ० देवराज उपाध्याय और लेसिंग

आधुनिक जर्मनी के आलोचकों में **लेसिंग** का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। **लेसिंग अरस्तू** का अनुयायी था और चाहता था कि **अरस्तू** द्वारा प्रतिपादित काव्य-सिद्धान्तों का साहित्य-क्षेत्र में ज्यों-का-त्यों पालन होना चाहिए। वह समझता था कि **अरस्तू** द्वारा प्रतिपादित काव्य-सिद्धान्त शाश्वत सत्य रूपी दीपक की ज्योति है और जिसकी आभा कभी मलिन नहीं पड़नी चाहिए। यही कारण था कि कभी-कभी साधारण पाठक को यह भ्रम हो जाता था कि **लेसिंग** क्लासिकल साहित्य के प्रति अंध श्रद्धा की भावना रखता है। **लेसिंग** रोमांटिक साहित्य के युग में भी **अरस्तू** द्वारा प्रतिपादित क्लासिकल साहित्य के सिद्धान्तों की दुहाई देता था। यद्यपि यह अनोखा सत्य है कि **लेसिंग** ही वह आलोचक-विचारक था जिसने जर्मनी में रोमांसवाद के स्वागतार्थ भूमि तैयार की थी। यही कारण था कि लोगों ने **लेसिंग** को Emancipated Classic कहा क्योंकि वह प्राचीन क्लासिकल साहित्य में केवल विश्वास करता था अंधविश्वास नहीं।

लेसिंग ने अपनी पुस्तक **Laocoon** में मूर्तिकला, चित्रकला और काव्य की सीमा निर्धारित की है। **Dramaturgic** में **लेसिंग** ने ट्रेजेडी के आन्तरिक और बाह्य रूपों और व्यवहारों पर तर्कपूर्ण विचार विवेचन किया है। काव्य-साहित्य के सिद्धान्तों की परख, विश्लेषण और उनके परिणामों के मूल्यांकन ने **लेसिंग** को सर्वश्रेष्ठ आलोचक बना दिया था।

लेसिंग का मत है कि काव्य-कला के अतिरिक्त अन्य जितनी भी कलाएँ हैं उनमें तन्मयता की प्राप्ति नहीं होती। इसका कारण यह है कि उन कलाओं में प्रयुक्त स्थूल उपकरण बीच-बीच में अपना

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 52-53
2. वही, पृ० 3

स्थूल रूप प्रकट कर ही देते हैं जिससे स्वच्छन्दता में बाधा पड़ती रहती है और तन्मयता का तारतम्य भ्रमित होता दिखायी पड़ता है। दूसरी ओर शब्द तो भाव ही हैं और यह भाव ही पाठक के समक्ष रसानुभूति प्रकट करते हैं यदि इनमें स्थूलता कुछ मात्रा में पायी भी जाती है तो पाठक की कल्पना में उससे रुकावट पैदा नहीं होती। काव्य ही वह वस्तु है जो पाठक को रसावस्था तक पहुँचाती है। **लेसिंग** की पारखी मनोवैज्ञानिक दृष्टि केवल क्षेत्र की भिन्नता निर्धारित नहीं करती वरन् वह उन उपकरणों की विभिन्नता निर्धारित करती है जिनका प्रयोग विभिन्न कलाओं में होता है। उदाहरणार्थ काव्य केवल शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त हो सकता है, चित्र रंगों के माध्यम से और मूर्ति पत्थरादि के माध्यम से। भिन्न माध्यमों के आश्रय के कारण प्रत्येक कला में इन माध्यमों की अभिव्यंजना शक्ति भी भिन्न-भिन्न हैं। चित्र से मूर्ति और काव्य का कार्य नहीं चल सकता है उसी प्रकार मूर्ति से चित्र और काव्य का तथा काव्य से चित्र और मूर्ति का कार्य नहीं चल सकता। यदि इनका आपस में एक-दूसरे से काम लिया जाने लगेगा तो यह एक दूसरे के क्षेत्र में अनधिकार प्रवेश करने की चेष्टा ही मानी जायगी। **लेसिंग** ने भिन्न-भिन्न कलाओं का सीमा-क्षेत्र निर्धारित किया। यह दूसरी बात है कि हमें प्रत्येक कला में सर्वत्र एक ही प्रकार की विशिष्ट मनःस्थिति और मनोवेग का दर्शन पाते हैं।

लेसिंग ने अपने निबन्धों के माध्यम से काव्य के व्यापक तथा अन्य कलाओं जैसे मूर्तिकला व चित्रकला के अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र का बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है।

एक स्थान पर **लेसिंग** कहता है कि सौन्दर्य में लावण्य (Charm) अवश्य होना चाहिए और मात्र कवि ही इस लावण्य का प्रदर्शन भली प्रकार कर सकता है। **लेसिंग** गतिशील सौन्दर्य को ही लावण्य का नाम देता है। उसका मत है कि यह गतिशील सौन्दर्य अथवा लावण्य कवि के लिए अत्यधिक उपयोगी है, चित्रकार या मूर्तिकार के लिए नहीं। वास्तव में चित्रकार के चित्रण गतिहीन हो सकते हैं। चित्रकार के वश में गति का व्यंग्यात्मक चित्रण ही है। अतः चित्रकार के लिए विद्रूप हो जाता है किन्तु, कविता में विशुद्ध रूप की और गतिशील सौन्दर्य की ओर देखने की लालसा बनी रहती है।

''गतिशील सौन्दर्य ही लावण्य है। इसलिए यह कवि के लिए जितना उपयोगी है, उतना चित्रकार के लिए नहीं। चित्रकार तो गति का व्यंगात्मक चित्रण ही कर सकता है, वास्तव में उसके चित्र गतिहीन होते हैं। अतः चित्रकार के लिए विद्रूप हो उठता है। पर कविता में उसके विशुद्ध रूप की ऐसे गत्यात्मक-सौन्दर्य की जिसकी ओर बार-बार देखने की लालसा बनी रहती है, रक्षा होती है।''[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि **लेसिंग** सच्चे अर्थों में आलोचक था। उसने अपने ग्रन्थों के द्वारा **हरडर** और **गेटे** के रोमांटिक सिद्धान्तों के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। उसने मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में साहित्य-शास्त्र के सिद्धान्तों के लिए सुदृढ़ आधार पर पृष्ठभूमि तैयार की। दर्शन के क्षेत्र में जो स्थान **कान्ट** का है, साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र में वहीं स्थान **लेसिंग** का है।

डॉ० देवराज उपाध्याय और परसी विशी शेली

शेली का नाम आज भी आंग्ल काव्य-गगन-मण्डल में देदीप्यमान नक्षत्रों की तरह विराजमान है जिनकी आभा को काल का अन्धकार भी स्पर्श नहीं कर पाता है। कठिन नियमों, रूढ़ियों और

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 63

बाह्य आडम्बरों के अत्याचार में पिसी जानेवाली कविता को मुक्ति दिलाने में शेली की बहुमुखी प्रतिभा का अनन्य योगदान है। अत्याचारों से शोषित कविता जिसे क्लासिकल काव्य-सिद्धान्तों ने नियमों के कारागार में डाल दिया था, उस बन्दिनी को कारागार से बाहर निकालने और उसे स्वाभाविक राह पर स्वाभाविक विकास के लिए प्रयत्नशील करने के लिए **शेली** ने अत्यन्त परिश्रम किया। यह प्रथमतः कवि था बाद में आचार्य।

शेली के काव्य-सिद्धान्त उसकी अपनी पुस्तक **Defence of Poetry** में संगृहीत हैं।

पिकाक ने अपनी पुस्तक **"The four Ages of Poetry"** में कविता की उत्पत्ति और उसके विकास पर चर्चा की थी और साथ ही यह विचार भी प्रतिपादित किये थे कि अब कविता का काल समाप्त होनेवाला है। **पिकाक** का मत था कि ज्यों-ज्यों मानव सभ्यता की ओर बढ़ेगा कविता से उसका नाता टूटता जायगा। **पिकाक** समझता था कि ज्ञान-विज्ञान की उन्नति के कारण कविता को अपना वर्चस्व भी बचाना कठिन होगा। पीतल युग की कविता ने जब बड़ा ही प्रतिगामी पद उठाया और Back to the nature का नारा लगाया तो **पिकाक** ने कविता के समर्थकों के समक्ष दो प्रश्न रखे। प्रथम तो यह कि कविता को पुनः लौह-युग की अवस्था में ले जाने का क्या औचित्य? तथा दूसरा प्रश्न था कि कविता की उपयोगिता क्या है? विज्ञान के आविष्कार तथा उद्योगों से हमारे व्यावहारिक जीवन में सहायता मिलती है। हमारी सुख-समृद्धि में वृद्धि होती है किन्तु कविता की काल्पनिक बातें हमारे किस काम की? **पिकाक** महोदय यह भी चाहते थे कि कवि अपने सामाजिक नेतृत्व का मुकुट अब वैज्ञानिकों और यंत्राविष्कारकों को सौंप दें।

शेली, पिकाक के इन आक्षेपों से विचलित हो उठा और उसने ठान ही लिया कि मुझे इन आक्षेपों को निरस्त करना है।

पिकाक महोदय के आक्षेपों की निस्सारता प्रमाणित करने के लिए **शेली** ने कविता के स्वरूप उसको उत्पन्न करनेवाली प्रेरणाओं व उससे सम्बद्ध विविध मानसिक व्यापारों की व्याख्या आदि की तथा कविता के विविध पहलुओं पर विचारपूर्ण विवेचन कर **पिकाक** महोदय की समस्त भविष्यवाणियों और आक्षेपों को निरस्त कर उन्हें ताक में बैठा ही दिया।

सर्वप्रथम **शेली** ने कविता क्या है? के प्रसंग में कविता के रूप पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर परिभाषा दी है। कविता की परिभाषा **शेली** के शब्दों में इस प्रकार है-" कविता कल्पना की अभिव्यक्ति है और यह अभिव्यक्ति मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है।"[1]

कविता का स्वरूप-निर्धारण करते समय **शेली** ने दो शब्दों का प्रयोग किया है वह है- कल्पना और विवेक। प्रकृति में यही दोनों शक्तियाँ काम करती हैं। कल्पना से कवित्व का भाव जागृत होता है और विवेक से वैज्ञानिक नियम व सिद्धान्तों की रचना की जाती है। कल्पना से कवित्व जागृत होने के बाद कलाकृति की रचना होती है। विवेक मस्तिष्क की शक्ति है यह प्रमेय वस्तु का विश्लेषण करती है और उसकी जाँच-पड़ताल कर प्रेरक शक्तियों की व्याख्या करती है। विवेक विशेष से साधारणत्व की ओर अग्रसर होता है किन्तु कल्पना इसके विपरीत साधारण से विशेषत्व की ओर बढ़ती है। प्रारम्भ में दोनों में साधारणत्व को ढूँढ़ा जाता है पर बुद्धि वहीं विश्रांत के कारण आगे नहीं

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 76

बढ़ती और 'कल्पना' यहाँ निरन्तर कार्य करते हुए इस साधारणत्व को विशेष में डालकर उसका रूप प्रत्यक्षीकरण करती है कि आत्मा को साधारण से सम्बन्ध स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव होता ही नहीं वरन् विशेष की स्थिति में गौण हो जाती है। अतः प्रत्येक कला का पूर्व रूप विज्ञानमय होता है और प्रत्येक विज्ञान का पूर्वरूप कलामय होता है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

विवेक का कार्य तोड़-फोड़ करना है और कल्पना यदि तोड़-फोड़ करती है तो जोड़ने के लिए। विवेक प्रमेय वस्तु के रंग को ग्रहण करता है तो कल्पना प्रमेय वस्तु में निहित रंग के व्यंजित भाव को।

कोई भी अति संवेदनशील प्राणी जब अपने जीवन के किसी भी महत्त्वपूर्ण क्षण में किसी अपूर्व ज्योति की झलक देखता है तो लगता है कि मानो उसे किसी अज्ञात लोक की वास्तविकता से साक्षात्कार हो गया है। उसकी इस कल्पना की कोई विशिष्ट रेखा या आकार-प्रकार नहीं होता है वह तो निर्गुण-निराकार होती है किन्तु कल्पना को इससे भी संतोष नहीं होता वह चुपके से अपनी समस्त जीवनी शक्ति के साथ मनुष्य के मन में प्रवेश कर तत्सम्बन्धी भावनाओं के विविध क्षेत्र का विस्तार करती है। मन-ही-मन यह विविध भावनाएँ एक व्यापक भावना में परिणति हो जाती हैं और भावों का एक चक्र स्थापित करती हैं जो अन्ततः कविता का रूप धारण करता है। उस मौलिक सत् पदार्थ की पूर्ण उन्मुक्त अभिव्यक्ति इसी रूप में हो सकती थी ऐसा कवि-आलोचक **शेली** का मत है। आत्मा में अभिव्यक्ति की एक प्रेरणा होती है उसी प्रेरणा के लिए आत्मा कल्पना को आज्ञा देती है और इस प्रेरणा के लिए जब आकाश-पाताल एक कर अभिव्यक्ति को शब्दों का जामा पहनाकर आत्मा के समक्ष लाकर खड़ी कर देती है तो कविता का जन्म होता है। अतः कविता कल्पना की अभिव्यक्ति है।

पिकाक महोदय के अन्य प्रश्न कि कविता की अभिव्यक्ति का उद्देश्य क्या है? इस पर **शेली** ने विधिवत् विचार-विनिमय किया है। **शेली** का मानना है कि मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति से कभी सन्तोष नहीं करता वह उच्चतम की ओर लक्ष्य करता है। मनुष्य की सारी प्रवृत्तियाँ उसको एक ऐसी अवस्था की ओर प्रेरित करती हैं जहाँ उसकी कल्पना उच्चतम को लक्ष्य करती है यह उच्चतम लक्ष्य और कुछ नहीं अपितु ब्रह्मानन्दसहोदर की क्षीण छायामात्र है। संसार में हमारी इन्द्रियों के द्वार से जो भी वस्तु संवेदित होती है वह दर्शकों, पाठकों और श्रोताओं को अधिकाधिक आनन्द की सृष्टि करा सकती है।

"सांसारिक वस्तुओं को देखकर मनुष्य को एक खास क्रम और लक्ष्य में विश्वास उत्पन्न हो जाता है, जिसमें और किसी चीज की अपेक्षा विशुद्ध आनन्द देने की सामर्थ्य है।"[1]

प्रकृति सदैव 'तट' से 'तम' की ओर लक्षित रहती है इस अवस्था तक पहुँचने की उसमें अदम्य प्रेरणा है और इसमें सफलता हेतु सहायतार्थ-मानव चेतन मस्तिष्क का प्रयोग करती है। अन्य कवि आलोचकों की तरह **शेली** भी आनन्द को काव्य का प्रयोजन मानते हैं। केवल आनन्द ही नहीं वरन् परमानन्द जो कि ब्रह्मानन्दसहोदर की क्षीण छायामात्र है।

तर्क, बौद्धिकता या विचार यह मनुष्य जाति की स्वाभाविक विशिष्टता है, इन्हीं के सहारे मनुष्य सपने सँजोता है। मनुष्य जानता है कि इन्द्रियानुभूत जितने भी पदार्थ हैं उन सबमें अधूरापन है वह

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 80

मानव प्रवृत्तियों को संतुष्ट नहीं कर सकते, उसकी सारी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकते किन्तु मनुष्य कल्पना के द्वारा एक आदर्श सत्ता अथवा व्यवस्था का दर्शन अवश्य कर सकता है। मानसिक जगत् की इस आवश्यकता की पूर्ति करती है कविता। कविता हमारे ऊपर पड़े अज्ञान के पर्दे को हटाकर हमें सच्ची स्थिति का ज्ञान कराती है और हमें आदर्श की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है। मानव को अपने विकास के लिए प्रेरित करते हुए विकास के अपार क्षेत्रों का उद्घाटन करती है। **शेली** कहता है कि कविता के इतने उपयोग होने पर भी **पिकाक** महोदय उसे निरुपयोगी बताएं तो यह हिमाकत नहीं तो और क्या है? प्रकृति, कला और कलाकार इन पर भी **शेली** ने विस्तृत प्रकाश डाला है। **शेली** ने अपने विस्तृत विवेचन में बताया कि मनुष्य का प्रकृति से, प्रकृति का कला से, कला का कलाकार से क्या और कैसा सम्बन्ध है।

कविवर **शेली** के अनुसार मनुष्य के अन्दर कुछ प्रवृत्तियाँ होती हैं और वे प्रवृत्तियाँ मनुष्य को सदैव प्रेरित करती रहती हैं। मनुष्य अपनी वर्तमान स्थिति से कभी भी संतुष्ट नहीं होता। ऐसे में मनुष्य को प्रवृत्तियों द्वारा प्रेरित किया जाता है। ये प्रवृत्तियाँ मनुष्य को उसी ओर प्रेरित करती हैं जिस ओर प्रकृति अपनी उच्चतम अवस्था को लक्ष्य करती है। अतः प्रकृति भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति की सफलता के लिए सदैव मानव चेतन मस्तिष्क की सहायता प्राप्त करती है। मानव प्रकृति के इस उद्देश्य से भलीभाँति परिचित होता है और वह प्रकृति को अपने लक्ष्य तक पहुँचने में उसकी सहायता करता है। मनुष्य को प्रकृति में कहीं पूर्णता दिखायी नहीं पड़ती किन्तु प्रत्येक वस्तु में कोई-न-कोई आनन्ददायक भावात्मक रूप समाया रहता है। विरोधी तत्त्वों की प्रधानता के कारण भले ही उसका स्वरूप गौण हो जाय किन्तु उसकी गौणता का एहसास होना ही काफी है। मनुष्य के हृदय में बैठा कवि इस गौणता को बृहदता से निकालकर विश्व में उसकी बृहदता का डंका बजाता है। इस कार्य में कल्पना अपना अत्यधिक योगदान देती है। इस कार्य की सफलता के लिए कल्पना आकाश-पाताल एक कर देती है।

अतः यदि कहा जाय कि कला प्रकृति के ऊपर संशोधन है तो असत्य नहीं, वास्तविक जगत् में जो वस्तुएँ हमें अस्पष्ट और अपूर्ण रूप में दिखायी पड़ती हैं उन्हें पूर्णता व स्पष्टता प्रदान करना ही कलाकार का कर्तव्य है।

प्रत्येक वस्तु की अपनी विशिष्टता अन्य वस्तु की विशिष्टता से विरोधस्वरूप टकराती है किन्तु मनुष्य विशिष्टताओं में साधारणत्व को प्रतीति के साथ सम्बद्ध कर एक ऐसी अवस्था की कल्पना करता है जो प्रकृति की आदर्श व्यवस्था को प्रतिनिधित्व प्रदान करती हुई उससे भी ऊँचे कहीं विराजमान होती है। अपने इस भाव को प्रकाशित करने के लिए मनुष्य भाषा का आश्रय लेता है। भावयुक्त भाषा के माध्यम से वह भावों के ही रूप में साहित्य-सृजन का कार्य करता है।

शेली का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति प्राकृतिक वस्तुओं का अनुकरण अपने अन्य क्रिया-कलापों की भाँति करता है। प्रत्येक मनुष्य के समान अनुकरण का प्रदर्शन समान नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य में अनुकृति को प्रदर्शित करने की क्षमता समान नहीं होती। इसी 'क्षमता' को 'प्रतिभा' या Taste का नाम दिया गया है। जिनमें यह प्रतिभा (Taste) अति प्रचुर मात्रा में विद्यमान है वह कवि, साहित्यिक विचारक, आविष्कारक, गृह निर्माता, रीति, रस्मों व कानूनों के प्रतिष्ठापक तथा संस्थाओं व धर्म के जन्मदाता आदि किसी भी विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में प्रकट हो सकते हैं।

शेली ने मनुष्य के अन्य क्रिया कलापों के अतिरिक्त नृत्य व संगीत का अनुकरण भी प्राकृतिक वस्तुओं की ध्वनि और उसकी हरकतों से किया है। इन्हीं क्रिया-कलापों के अनुकरण के मध्य उसे विशुद्ध आनन्द की सृष्टि करनेवाली आदर्श व्यवस्था की झलक दिखायी देती है और आगे चलकर मनुष्य इस आदर्श का अनिवार्य और शाश्वत रूप स्वीकार कर ही लेता है। भले ही इस आदर्श सत्ता का मापदण्ड प्रत्यक्ष रूप से दिखायी पड़े या न पड़े। स्वयं **शेली** कहता है, ''जिसकी स्थिति उसे अधिक अक्षुण्ण है, उसके अस्तित्व की झलक आविष्कार को, धर्म व्यवस्थापकों और धर्मप्रवर्तकों को मिली है।''[1]

कला का प्रारम्भ आदिमयुग के संगीत व नृत्य का अनुकरण है। इस अनुकरण की प्रवृत्ति निरन्तर आगे की ओर बढ़ती हुई अन्ततः अपनी चरम सीमा भी पार कर जाती है। इस यात्रा में वह प्रकृति के ऊपर न तो कोई शक्ति और नियम लादती है और न ही कोई ऐसी वस्तु उसमें जोड़ने का प्रयत्न करती है, जो उसमें वर्तमान न हो। वह तो प्रकृति का केवल संशोधित अनुकृति मात्र है। साथ-ही-साथ कला का यह प्रयत्न भी रहता है कि वह प्रकृति के अन्तराल की उस अविकसित शक्ति का विकास करे जिसका ज्ञान स्वयं प्रकृति को भी नहीं है जिससे कि प्रकृति अपनी उसी शक्ति के अनुरूप अपना विकास कर सके, उसकी गतिविधियाँ नियंत्रित और इतनी ज्योतिर्मय हो जायँ कि वह सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के रूप को प्राप्त हो सके।

कविवर **शेली** का मत है कि कल्पना पुनर्सृजन का कार्य करती है। जो भी कुछ उसे बाह्य जगत् से प्राप्त होता है उसके इन्द्रियों के मार्ग से मनुष्य के अन्तःकरण से टकराकर एक ज्योति विकसित होती है और ज्योति के बढ़ते आलोक में वह एक अलौकिक नवजगत् का साक्षात्कार करता है और फिर अमूर्त को मूर्त का रूप अपनी अनुकृति की प्रवृत्ति से सहज ही दे देता है। चाहे वह मूर्तिकला हो, गृहकला अथवा अन्य कोई भी कला किन्तु कल्पना द्वारा सृजित भावों को साकार रूप देने की सबसे अधिक क्षमता शब्दों में है, अन्य किसी माध्यम में नहीं। शब्द तो भावों के संकेत ही नहीं वरन् स्वयं भी भाव रूप हैं। बिना किसी विरोध के भाव शब्दों के रूप में खुलकर प्रकाश में आ जाते हैं।

कवित्व भाव की चेतना मानवीय चेतना का स्वाभाविक रूप है। वह हर इंसान की प्रवृत्ति है किन्तु इसका विकास मानवीय चेतना के विकास के साथ ही सम्भव है।

भाषा और कल्पना का परम सम्बन्ध है कल्पना की कृति। कल्पना से अलग भाषा का कोई रूप नहीं है, कोई अस्तित्व नहीं है। भाषा और कल्पना का भेद केवल जल और तरंगों, हृदय और धड़कनों, आकाश व नक्षत्रों के भेद के समान ही है। **शेली** के अनुसार- ''भाषा कल्पनाप्रसूत है, अतः उसका सीधा सम्बन्ध पारस्परिक है, जो कल्पना और अभिव्यक्ति के बीच की सीमा तथा सूत्र बनती है।''[2]

कल्पना ही काव्य का प्रेरणा-स्रोत है अर्थात् कल्पना को यदि काव्य की जननी कहा जाय तो ग़लत नहीं है। यह प्रेरणा अर्थात् कल्पना मानव की आदि सहचरी है और जीवनपर्यन्त उसके साथ ही लगी रहती है। यह कवि को अपनी अभिव्यक्ति के लिए बाध्य कर देती है मानो वह किसी दिव्य

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 83
2. वही, पृ० 86

आध्यात्मिक सत्ता के वशीभूत होकर अभिव्यक्ति का कार्य करती है। काव्य की प्रेरणा की तर्क से तुलना करना मूर्खता होगी क्योंकि यह तो स्वतःप्रसूत अनियंत्रित किसी रहस्यमयी शक्ति के वशीभूत कार्य करती है।

कविता मनुष्य की मानसिक तृप्ति का साधन और मनुष्य की मानसिक चेतना की चिरसंगिनी है। यह आदर्श व्यवस्था की ओर संकेत करती है जो प्रकृति की उच्चतम अवस्था है जहाँ सुख है, आनन्द है बल्कि ब्रह्मानन्दसहोदर है।

डॉ० देवराज उपाध्याय और विलियम वर्ड्सवर्थ

विलियम वर्ड्सवर्थ उस समय का कवि था जब फ्रांस की क्रांति ने उग्र रूप धारण कर लिया था, जिसके फलस्वरूप हर ओर विद्रोह का स्वर मुखर था। साहित्य के क्षेत्र में इस परिवर्तन के प्रति आवाज़ उठायी **वर्ड्सवर्थ** ने और साहित्यिक रूढ़ियों और परम्परावादी काव्य के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित करने में **विलियम वर्ड्सवर्थ** का नाम अग्रणी है।

वर्ड्सवर्थ के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना थी **कॉलरिज** से उसकी मैत्री। **वर्ड्सवर्थ** के जीवन की यह घटना काव्य-साहित्यिक जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना बन गई। दोनों काव्य सम्बन्धी चर्चाएं करते थे और साहित्य को समृद्धिशाली बनाने की योजनाएँ बनाते थे। **वर्ड्सवर्थ** और **कॉलरिज** की सम्मिलित काव्य-चर्चा का परिणाम हमें **Lyrical Ballads** के रूप में मिलता है। जो क्लासिकल साहित्य के प्रभावपूर्ण शान्त सरोवर में हलचल पैदा करने और विक्षोभ भर देनेवाली वस्तु थी। **Lyrical Ballads** में **वर्ड्सवर्थ** ने साहित्य-शास्त्र का बड़ा ही सशक्त और शक्तिशाली वर्णन किया है। उसकी उत्कृष्ट काव्य रचनाओं के कारण उसे 1843 में कवि सम्राट् यानी **Poet Laureateship** की उपाधि से अलंकृत किया गया था। यह उस युग का सर्वश्रेष्ठ सम्मान था।

वर्ड्सवर्थ के विचारों और भावों की साधारणता ही उसके काव्य की विशेषता थी। उसके विचारों और भावों में कहीं भी कोई भी ऐसी बात नहीं दिखायी देती जिससे उनको मौलिक कहा जाय किन्तु **वर्ड्सवर्थ** के काव्य में मौलिकता इस बात में है कि उसने जिन भी विचारों और भावों का समावेश अपने काव्य में किया है उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप मिलती है। उसमें वर्ड्सवर्थीय विशिष्टता का समन्वय हो गया है। अपने विचारों एवं भावों को अत्यन्त साधारण ढंग से लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करना उसकी विशिष्टता थी। यह साधारण प्रस्तुति ही उसकी उच्चता थी। बाहर के भावों को लेकर उन्हें अपने अनुरूप स्वरूप दे साज-सज्जा के साथ लोगों के सामने परिवेष्ठित करना **वर्ड् सवर्थ**की विशे षता रही है।

वर्ड्सवर्थ की कविताओं में हमें सजीव मस्तिष्क और सजीव क्रियात्मक सृजनशील व्यक्तित्व के अतिरिक्त उसमें सहानुभूतिपूर्ण मातृत्व का भी दर्शन होता है। उसके काव्यों में आनन्द के साथ-साथ जीवन के गम्भीर रहस्यों की धारा भी बहती है, जीवन की वास्तविकता के प्रति जागरूकता भी दिखायी देती है। यहीं से पाठक **वर्ड्सवर्थ** से दर्शन-शास्त्र का प्रथम पाठ भी पढ़ता है। यद्यपि कवि **वर्ड्सवर्थ** ने अपना समस्त जीवन काव्य-रचना में व्यतीत किया था तो भी उसका उद्देश्य अपने काव्यों के माध्यम से सौन्दर्य की सृष्टि करना नहीं था अपितु सत्य का अन्वेषण ही उसका एकमात्र ध्येय था, यही विशेषता रोमांटिक कवियों की अपनी अलग विशिष्टता है। उसके समक्ष सुन्दरम् की नहीं वरन् सत्यम् की मूर्ति थी।

उसकी कविताओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि यदि **वर्ड्सवर्थ** पुस्तकहीन और जनहीन संसार में भी जन्मा होता तो उसके विचार तब भी वही होते जो आज हैं। शायद यही कारण है कि वह प्रकृति के साहचर्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास देखता है। इसी कारण वह **Lyrical Ballads** में ग्रामीण किसान को अपने काव्य का विषय बनाता है। निम्न ग्रामीण जीवन का प्रशस्ति-गान गाते हुए वह कहता है ग्रामीण अवस्था में हृदय की भावनाओं को फलने-फूलने का अवसर अधिक मिलता है। प्रकृति के सम्पर्क और साहचर्य से मनुष्य के विचार अधिक सूक्ष्म और स्वस्थ होते हैं। दूसरे उसका विचार यह भी था कि प्रकृति के साथ अहर्निश सम्पर्क में जीवन व्यतीत करने से भाषा की श्रेष्ठता का निर्माण होता है। इसी कारण **वर्ड्सवर्थ** ने काव्य के लिए ग्रामीण किसानों की उद्दीप्त क्षणों की भाषा का काव्य के प्रयोग के लिए अनुमोदन किया है। इस बात को लेकर **वर्ड्सवर्थ** की काफी आलोचना की गयी थी। आलोचकों ने भारी तूफान उठाकर **वर्ड्सवर्थ** की भर्त्सना की थी। यहाँ तक कि उसके अपने मित्र **कॉलरिज** तक ने उसे अपनी आलोचना का विषय बनाया था किन्तु इससे **वर्ड्सवर्थ** के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह सदैव अपने विचारों पर चट्टान की तरह अडिग रहा।

विलियम वर्ड्सवर्थ रोमांटिक युग का सर्वश्रेष्ठ नेता व अनन्य पुजारी था। उसकी कविताओं में स्वच्छन्दतावादी चिन्तन की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। **वर्ड्सवर्थ** बड़ा ही भावुक था और उसका हृदय अत्यन्त ग्रहणशील था। उसने दो बार फ्रांस की यात्रा की थी। संयोग से उन्हीं दिनों फ्रांस में बड़ी ही उथल-पुथल मची थी। लोग प्राचीन रूढ़ियों और दासत्व के प्रति अपनी आस्था व विश्वास तो समाप्त कर विद्रोह छेड़ चुके थे और समता, भाई-चारा और स्वतंत्रता के सपनों को चरितार्थ करने वाली कल्पना से मदमस्त थे। फ्रांस में उन दिनों क्रांति की लहर सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही थी। **वर्ड्सवर्थ** के भावुक मन और विचारों पर इस क्रांति का प्रभाव पड़ा। वह क्रांतिकारियों का सहयोग भी करना चाहता था किन्तु अपने अभिभावकों के कारण इंग्लैण्ड वापस आ गया। फ्रांस की क्रांति की उत्तमता पर **वर्ड्सवर्थ** का हृदय इतना मुग्ध था कि जब राजन्नीतिक मतभेद के कारण इंग्लैण्ड व फ्रांस के मध्य युद्ध छिड़ा तो वह फ्रांस की विजय कामना की और प्रार्थना किया करता था। वह सांसारिक संघर्षों से तंग आ चुका था और संघर्षों से मुक्ति पाने के लिए अन्ततः उसने प्रकृति की गोद में शरण ली। संयोगवश उसे Wyet Valley में **भ्रमण करने का अवसर मिला।** वहाँ के सौन्दर्य को देख **वर्ड्सवर्थ** मंत्रमुग्ध हो गया। उस समय हृदय से मानो उद्गार फूट पड़े। **वर्ड्सवर्थ** के यह उद्गार काव्य-साहित्य जगत् की अविस्मरणीय और शाश्वत सम्पत्ति बन गये। उसके प्रकृति सम्बन्धी श्रेष्ठ काव्यों के लेखन का समय यह ही था किन्तु **वर्ड्सवर्थ** के दृष्टिकोण में आगे चलकर अचानक परिवर्तन दिखायी पड़ा। कहाँ तो वह स्वच्छन्दतावाद और प्रकृति के सौन्दर्य के गीत गाया करता था, कहाँ अब उसके काव्य में काठिन्य और कट्टरता आ गयी थी अब तो वह प्रत्येक सुधार का भी विरोधी हो गया था। जो कवि आनन्द और उल्लास, संयोग-वियोग, प्रकृति शृंगार और अनुपम वैभव के गीत गाया करता था वही जीवन के दुखमय व सुखमय बनाने का तरीका तथा लोगों को नैतिक शिक्षा और कर्तव्य के प्रति जागरूकता का पाठ पढ़ाने लगा था। फ्रांस की क्रांति ने भी आगे चलकर वीभत्स रूप धारण कर लिया जिसका सीधा प्रभाव उसके हृदय व विचारों पर पड़ा था। यही कारण था कि वह सुधारों तक का विरोधी हो गया था। अतः फ्रांस की क्रांति के परिवर्तित स्वरूप ने ही **वर्ड्सवर्थ** के उत्साह और उमंग की करुणा पर अविश्वास और अनास्था की चादर डालकर उसकी आभा को समाप्त कर दिया था।

वर्ड्सवर्थ के काव्य में मूल रूप से दो सिद्धान्तों के दर्शन होते हैं। यही सिद्धान्त **वर्ड्सवर्थ** के काव्य की गतिविधि को संचालित करते दिखायी देते हैं। **वर्ड्सवर्थ** का पहला काव्य सिद्धान्त मनुष्य से सम्बन्धित था तो दूसरा काव्य-सिद्धान्त प्रकृति से। **वर्ड्सवर्थ** कहता था कि मनुष्य के अन्दर ही नारायण निवास करता है। नर में ही नारायणत्व का अंश होता है। मनुष्य चाहे तो वह नारायण का स्वरूप हो सकता है। वह नारायण बन परिस्थितियों पर शासन कर सकता है न कि उसके हाथ की कठपुतली। **वर्ड्सवर्थ** वैयक्तिक गौरव में पूर्ण विश्वास व आस्था रखता था। **वर्ड्सवर्थ** का यह सिद्धान्त तत्कालीन समाज और उसके वातावरण की अपनी विशिष्टता थी।

दूसरा सिद्धान्त उसका रूसो द्वारा दिये नारे 'Back to the nature' से प्रभावित था। उसकी धारणा थी कि यदि मनुष्य प्रकृति से सम्बन्ध स्थापित करले तो प्रकृति के साहचर्य में मनुष्य अपने अन्दर अपार मानसिक और नैतिक बल को संगृहीत कर सकता है। अपनी इस धारणा के प्रति **वर्ड्सवर्थ** पूर्णतः आश्वस्त था। **Lyrical Ballads** में उसने अपने इस सिद्धान्त को पूर्णतया प्रतिपादित भी किया है।

वर्ड्सवर्थ के मन में प्रकृति और मनुष्य के प्रति अपार श्रद्धा भाव थे। वह दोनों को सर्वशक्ति-सम्पन्न समझता था किन्तु साथ ही उसका विश्वास यह भी था कि मनुष्य और प्रकृति के अन्तराल से शक्ति ग्रहण करने को स्वयं को स्वच्छन्द विचरण करने दे तो वह अनन्त शक्ति-सम्पन्न हो सकता है। वह कहता है कि यद्यपि प्रकृति का अस्तित्व भी है और प्रकृति में वह शक्ति भी है कि वह मनुष्य के हृदय को दिव्य शक्ति से मण्डित कर दे किन्तु मनुष्य के कल्पना-संसार के अभाव में प्रकृति मूक हो जाती है क्योंकि मनुष्य की कल्पना ने ही प्रकृति को वाणी दी है चाहे प्रकृति Things for ever speaking ही क्यों न हो। उसे जीवन तो मानव-जीवन से ही मिलता है। **वर्ड्सवर्थ** कहता है कि प्रकृति उसे ही कुछ देती है जो प्रकृति को कुछ देता है। प्रसुप्त कल्पनावाले व्यक्ति से प्रकृति को कोई सरोकार नहीं, प्रकृति की विभूतियों का वरदान उसी को प्राप्त हो सकता है जिसकी कल्पना सदैव जागरूक हो। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि **वर्ड्सवर्थ** के अनुसार जब मनुष्य की कल्पना के इस गौरवमयी प्रकृति के साथ सम्बन्ध होंगे तो मनुष्य धर्म, सुख, शान्ति और नीति को प्राप्त कर सकता है।

वर्ड्सवर्थ प्रकृति का प्रेमी था और उसका अधिकांश समय प्रकृति के साहचर्य में व्यतीत होता था। प्रकृति की निकटता के कारण प्रकृति की समस्त वस्तुओं के प्रति उसके हृदय में प्रेम, श्रद्धा और आकर्षण के भाव जागृत हो गए थे। शहर निवासियों की अपेक्षा ग्रामवासियों विशेषकर किसानों का जीवन प्रकृति के साहचर्य में व्यतीत होता है अतएव किसानों के जीवन, भाव, रहन-सहन, भाषा और उनकी भावनाओं का वह बड़ा आदर करता था और ग्रामीण किसान को वह बड़े ही सम्मान की दृष्टि से देखता था। ग्रामीण किसानों की भाषा में उसे एक विचित्र-सा दर्द, जीवन की हलचल, मायूसी, अपील और सबसे ऊपर पवित्रता दिखायी पड़ती थी। इसके साथ **वर्ड्सवर्थ** की विधायक कल्पना शक्ति इतनी तत्पर थी कि वह प्रकृत वस्तु को अपने रस से सींचकर लोक सृष्टि का बना देती थी। **वर्ड्सवर्थ** की इस प्रवृत्ति के कारण उसके मन के भाव अपनी अभिव्यक्ति के लिए ऐसी भाषा चुनते थे जो सजीवता लिए हुये साधारण बोल-चाल की भाषा से भी कहीं अधिक उच्चता लिये होती थी।

इस प्रकार **वर्ड्सवर्थ** का काव्य दो प्रकार की शैलियों से प्रेरित दिखायी पड़ता है। पहली शैली

प्रकृति-प्रेमी व्यक्ति से और दूसरी उसकी विधायक कल्पना से। **वर्ड्सवर्थ** की शैली के प्रेरणास्रोत को देख उसके आलोचकों के स्वर मुखरित हो उठे। **कॉलरिज** उसके आलोचकों में प्रमुख था। उसके आलोचकों का कथन था कि जब स्वयं **वर्ड्सवर्थ** ने ही अपने Poetic Diction वाले सिद्धान्तों का परिपालन नहीं किया तो इसका अर्थ यही है कि इसमें कोई तथ्य या कोई सत्य नहीं है।

वर्ड्सवर्थ के काव्य-शास्त्र के सम्बन्ध में **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने बड़ी ही विस्तृत चर्चा की है। **वर्ड्सवर्थ** के काव्य-सिद्धान्त और आलोचकों द्वारा इसकी आलोचना दोनो ही तत्त्वों को डॉ० **उपाध्याय** ने अपने चिन्तन व मनन का विषय बनाया है।

डॉ० देवराज उपाध्याय वर्ड्सवर्थ और **कॉलरिज** की मैत्री को आँग्ल साहित्य की एक विचित्र घटना मानते हैं। **वर्ड्सवर्थ** और **कॉलरिज** की मैत्री के कारण ही Lyrical Ballads जैसे काव्य-संग्रह का प्रणयन सम्भव हो सका था। इस काव्य-संग्रह में दोनों मित्र कवियों की कविताएँ सम्मिलित रूप से संग्रहीत थीं और इन मित्रों की कविताओं का एकमात्र उद्देश्य था काव्य की आत्मा की क्लासिकल काव्य के परम्परावादी नियम, आडम्बर और अनुशासन से मुक्ति। लोगों के समक्ष यह आदर्श उपस्थित करना कि स्वच्छन्द और उन्मुक्त वातावरण में पली कविता कितने अधिक बल का संचार करती है और स्फूर्तिदायक हो सकती है। इस काव्य-संग्रह में संगृहीत कविताएँ आम काव्य-प्रवाह से हटकर एकदम विपरीत धारा प्रवाहित करती दृष्टिगोचर होती थी। विपरीत धारा प्रवाहित करती इस काव्य संग्रह की कविताओं का भावपक्ष और विभाव पक्ष दोनों ही तत्कालीन युग के काव्य से एकदम भिन्न थे। नूतन काव्य-धारा व काव्य युग का प्रारम्भ करने के उद्देश्य से उसके स्वरूप पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया था **वर्ड्सवर्थ** ने। उसके द्वारा प्रस्तुत काव्य-सिद्धान्तों को रोमांटिक काव्यधारा का प्रधान आधार-स्तम्भ माना गया है। यही कारण है कि Lyrical Ballads की भूमिका अर्थात् Preface को **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने 'रोमांटिक काव्य का बाइबिल' कहा है।

Lyrical Ballads के प्रकाशन के पूर्व **वर्ड्सवर्थ** के मित्रगण नूतन काव्यधारा के स्वरूप पर प्रकाश डालने के उद्देश्य से और नूतन काव्य-सिद्धान्त प्रतिपादित करने के उद्देश्य से यह चाहते थे कि **वर्ड्सवर्थ** एक ऐसी पुस्तक लिखे जिसमें उपर्युक्त सभी तत्त्वों के अतिरिक्त काव्य का रसास्वादन भी कर सके। **वर्ड्सवर्थ** ने यद्यपि कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी किन्तु उसकी सहज बुद्धि यह अवश्य स्वीकारती थी कि प्रेषणीय और ग्रहणीयता काव्य का मुख्य आधार है। क्लासिकल साहित्य की तड़क-भड़क के सामने Lyrical Ballads जैसी सीधी-सादी कविता के प्रस्तुतीकरण के संदर्भ में इसके समर्थन और सफाई प्रस्तुत करने के उद्देश्य से और इस पुस्तक के सम्बन्ध में की गयी ऊट-पटाँग आलोचनाओं का उत्तर देने के लिए ही **वर्ड्सवर्थ** ने इसके द्वितीय संस्करण में भूमिका लिखी जो Preface के नाम से जानी जाती है। इसमें **वर्ड्सवर्थ** ने तत्कालीन क्लासिकल काव्यालोचना और उसकी असंगतियों से रोमांटिक कविताओं की भिन्नता प्रतिपादित करते हुए भिन्नता के कारण तथा उसकी उपलब्धियों इत्यादि का वर्णन किया है।

वर्ड्सवर्थ ने क्लासिकल काव्य की तड़क-भड़क से भिन्नता रखने के कारण ही साधारण ग्राम्य जीवन की घटनाओं और परिस्थितियों को अपने काव्य का विषय बनाया। अपने काव्य में भाषा-प्रयोग करते समय **वर्ड्सवर्थ** ने इस बात का प्रयत्न किया और ध्यान भी रखा कि सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा को काव्योपयोगी बनाया जाय क्योंकि यह भाषा साधारणतः जनसाधारण के व्यवहार की

भाषा होती है। इस भाषा के प्रयोग के माध्यम से वह इस काव्य को जनसाधारण तक पहुँचाने की चेष्टा करता है।

जब **वर्ड्सवर्थ** ने अपने ही प्रदेश की यानी कम्बरलैण्ड के लेक डिस्ट्रिक में ग्राम्य और साधारण जीवन की घटनाओं को अपने काव्य का विषय बनाया तो आलोचकों ने उसकी खूब भर्त्सना की किन्तु **वर्ड्सवर्थ** तो अपने मत पर अटल था, चट्टान की भाँति अडिग था। **वर्ड्सवर्थ** का काव्य-सिद्धान्त सर्वप्रथम प्रकृति से प्रेरणा लेता है। अतः उसका मत था कि नगरवासी प्रकृति के साहचर्य से दूर रहता है जिसके कारण उसके खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन और साज-सज्जा के ढंग में कृत्रिमता बस जाती है जो उसे प्रकृति से और अधिक दूर कर देती है और वहीं दूसरी ओर एक ग्रामीण किसान प्रकृति के साहचर्य में अपना समय व्यतीत करता है अतः उसके रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा और साज-सज्जा को सभ्यता के कृत्रिम बोझ से दबना नहीं पड़ता फलतः वह अपनी स्वाभाविकता नहीं छोड़ते। उनके जीवन का संचालन नैसर्गिक रूप से होता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य का प्राकृतिक जीवन-स्रोत मनुष्य के जीवन को निरन्तर सींचता रहता है। मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्ति का विकास भी इसी अवस्था में सम्भव है और तभी मनुष्य की मानवोचित भावनाओं को प्रस्फुटित होने का अवसर मिल सकता है।

वर्ड्सवर्थ स्वयं भी कहता है:

"In that condition the essential passions of human heart (which supply the subject of poetry) find a setter soil in which they can attain maturity.

अर्थात् "इस परिस्थिति में ही काव्य के आधारभूत मानव-हृदयस्थ प्रधान भावनाओं को परिस्फुटित होकर परिपक्वावस्था तक पहुँचने के लिए उपयोगी जमीन मिल सकती है।"[1]

अतः ग्राम्य जीवन में ही उसे अपने काव्योपयोगी इतनी सामग्री मिल सकती है तो काव्योपयोगी विषयों का निर्वाचन नगर के कृत्रिम जीवन से क्यों करे? अतएव **वर्ड्सवर्थ** ने किसानों, हलवाहों और प्रकृति के यशगान को ही अपने काव्य का विषय बनाया।

अपने काव्य-संग्रह **Lyrical Ballads** की भाषा के लिए उसने साधारण लोगों के व्यवहार की भाषा को ही चुना है। **वर्ड्सवर्थ** ने स्वयं भी In a selection of language really used by man- कहकर सर्वसाधारण की वास्तविक भाषा के प्रयोग का अनुमोदन किया है। विद्वानों ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण युक्तियों से वर्ड्सवर्थ के भाषा-सम्बन्धी सिद्धान्तों की जमकर आलोचना की थी किन्तु **डॉ० देवराज उपाध्याय** के अनुसार **वर्ड्सवर्थ** के आलोचक त्रुटि पर थे और इसी कारण वह **वर्ड्सवर्थ** के साथ न्याय नहीं कर सके। पहली बात तो यह थी कि **वर्ड्सवर्थ** ने अपने काव्य-सम्बन्धी सिद्धान्त **Poetic Diction** के विरोध में प्रतिपादित किये थे। **वर्ड्सवर्थ** की आलोचना करते समय आलोचक इस तथ्य को भुला चुके थे। दूसरे **वर्ड्सवर्थ** ने अपने काव्य-संग्रह में ग्रामीण किसानों की सर्वसाधारण की भाषा की जो प्रशस्ति गायी है उसका अर्थ ही आलोचकों ने गलत निकाला। वह समझे कि काव्य में प्रयुक्त केवल ग्राम्यवासियों की सर्वसाधारण भाषा ही काव्य भाषा का स्थान ले सकती है अन्य कोई भाषा नहीं, जबकि **वर्ड्सवर्थ** ने ग्रामवासियों की भाषा की अपने काव्य में केवल प्रशंसा की है। उसे काव्योपयोगी एकमात्र भाषा बनाने के लिए युद्ध नहीं।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 113

अठारहवीं शताब्दी में **Poetic Diction** के आधार पर कुछ ऐसी कविताएँ लिखी जा रही थीं जिनको पढ़कर लोगों के मन में यह धारणा घर कर रही थी कि काव्य की भाषा में कुछ-न-कुछ वैशिष्ट्य अवश्य ही होना चाहिए। साथ-ही-साथ लोग इस बात में भी विश्वास करने लगे थे कि गद्य और पद्य की भाषा एक नहीं हो सकती है। दोनों में पर्याप्त विभिन्नता है। किसी बात को साधारण सीधे-सादे ढंग से सहज भाव से प्रस्तुत करना गद्य ही माना जायगा काव्य नहीं। काव्य की श्रेणी में स्वयं को प्रतिष्ठित करने के लिए कविता को अपने अन्दर कुछ विशिष्ट शब्दों को सँजोना होगा। Man, Lady, Sky तथा Sea इन शब्दों का काव्य में कोई स्थान नहीं होगा किन्तु Swain, Nymph, Blue, Deep इत्यादि ऐसे शब्द हैं जो काव्योपयोगी हैं। यदि किसी वस्तु का उल्लेख उसके प्रचलित नाम से या किसी घटना को प्रकृत रूप में उपस्थित कर दिया जाता था तो समस्त वर्णन नीरस माने जाते थे। जड़ को चैतन्य रूप प्रदान करने, मूर्त को अमूर्त रूप देना, अर्थान्तरन्यास का प्रयोग और प्राचीन क्लासिकल साहित्य के शब्दों वाक्यांशों तथा कथाओं का बारम्बार प्रयोग ही काव्यात्मक समझा जाता था। तत्कालीन काव्योद्यान की शोभा इस तरह के झाड़-झखाड़ों से मन्द हो गई थी। **वर्ड्सवर्थ** कहता है कि यदि हम **Poetic Diction** के सिद्धान्त के पक्षपाती कवियों की रचनाओं का अध्ययन करें तो हमें वही अंश सर्वोत्तम लगेंगे जहाँ कवि **Poetic Diction** के सिद्धान्त से परे भाव व्यक्त करता है।

प्रायः **वर्ड्सवर्थ** के आलोचक इस प्रश्न को उसकी आलोचना करते समय अवश्य ही प्रस्तुत करते थे कि क्या ग्राम्य जीवन में ग्रामवासियों द्वारा प्रयुक्त भाषा काव्य की भाषा हो सकती है? इस सम्बन्ध में **वर्ड्सवर्थ** कहता है कि कवि दो प्रकार से भावाभिव्यक्ति करता है। प्रथम नाटकीय साधन कहलाता है अर्थात् कवि पात्रों के द्वारा, उनके संवादों के द्वारा अपने हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति करता है। अभिव्यक्ति के प्रथम प्रकार को लेकर तो आलोचक कोई आपत्ति नहीं करते किन्तु दूसरे प्रकार की अभिव्यक्ति को लेकर उनमें पर्याप्त मतभेद के दर्शन होते हैं। नाटकीय अभिव्यक्ति के बारे में सभी एकमत हैं कि पात्रों की स्थिति के अनुरूप ही भाषा-योजना होनी चाहिए। नाटक के पात्र किसी भी वर्ग के लिये जा सकते हैं और उनका कण्ठ स्वर भी उसी वर्ग जाति के अनुरूप होना चाहिए, जिससे वे सम्बन्धित हों। यदि ऐसा नहीं होगा तो उस काव्य में कृत्रिमता आ जायगी। काव्य में तादात्म्य और साधारणीकरण सम्भव न हो सकेगा फलतः काव्य रसानुभूति देने के स्थान पर नीरस हो जायगा।

अभिव्यक्ति के वर्णनात्मक साधन के प्रयोग के बारे में आलोचक **वर्ड्सवर्थ** के भाषा विषयक सिद्धान्तों के विरुद्ध थे। उनका कथन था कि अभिव्यक्ति के वर्णनात्मक साधन के प्रयोग में कवि की भाषा **Poetic Diction** सिद्धान्त के अनुरूप ही होनी चाहिए क्योंकि इसमें वर्णन कवि स्वयं कर रहा है न कि किसी वर्ग-विशेष के पात्रों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति हो रही है किन्तु **वर्ड्सवर्थ** की विचारधारा अपने आलोचकों के विरुद्ध थी। उसका मत था कि कवि भी मानवीय भावनाओं के अनुरूप ही भावधारा और विचारधारा रखता है, साधारण मनुष्यों के समान सोचता भी है तो फिर उसकी भाषा अपने ही समान सोचने वाले व्यक्तियों और अपने ही समान अनुभव करनेवाले व्यक्तियों से किस प्रकार भिन्न हो सकती है? **वर्ड्सवर्थ** का कहना है कि कवि का कर्तव्य भावों की अभिव्यक्ति करना है किन्तु यह अभिव्यक्ति इस प्रकार की होनी चाहिए कि सर्वसाधारण के हृदय में उतर जाय। भाषा की कृत्रिमता वर्ण्य-विषय की स्वाभाविकता को मलिन कर देती है और काव्य ऐसा हो जाता है जैसे अधिक पानी

डालकर बनाया गया शर्बत जिसका स्वाद फीका हो लेकिन है तो शर्बत। अतः काव्य में जहाँ तक सम्भव हो सके सीधी-सादी, साधारण सुलभ और व्यवहार की भाषा का ही प्रयोग होना चाहिए। भावों की गहराई और भव्यता तक पहुँचने में सीधे-सादे स्वाभाविक शब्द ही समर्थ हो सकते हैं।

साहित्य में तड़क-भड़क और कृत्रिमता की प्रवृत्ति सदैव से ही विद्यमान रही है ऐसा नहीं है। **Lyrical Ballads** के अध्ययन से पता चलता है कि साहित्य में इस प्रकार की प्रवृत्ति ने पैर शनैः-शनैः जमाये थे। प्राचीन कवि जब कविता किया करते थे वह उसी साधारण भाषा का प्रयोग अपने काव्य में किया करते थे जो अत्यन्त ही सहज और स्वाभाविक होती थी। प्राचीन काव्य का सृजन भी स्वाभाविक वेग से होता था। कविता स्वतःप्रसूत होती थी। किसी भी प्रकृत वस्तु के सम्पर्क में आने के बाद कवि के हृदय के उद्‌गार कविता के रूप में फूट पड़ते थे। वह जो कुछ भी सोचता विचारता था काव्य में भी वही मिलता था। यही कारण था कि लोग उसकी कविता से प्रभावित होते थे क्योंकि कविता कवि के हृदय से निकल पाठक के हृदय में विराजती थी। दुर्भाग्य से इसी समय कुछ ऐसे अनधिकारी कवियों ने साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया जो प्राचीन कवि के समान पाठक के अन्तःस्थल में हलचल तो पैदा नहीं कर सकते थे किन्तु उस पर प्रभाव को उत्पन्न करने की लालसा अपने हृदय में अवश्य रखते थे। फिर उन्होंने यह देखना प्रारम्भ किया कि प्राचीन कवि के काव्य में वह क्या है जो पाठक को प्रभावित करती है उनको लगा कि कुछ वाक्यांशों, शब्दों, अलंकारों और उन्हीं के नमूने पर आधारित शब्दों के बारम्बार प्रयोग से ही काव्य में रस उत्पन्न हो सकता है। वास्तविक प्रेरणा के अभाव में शायद कृत्रिम विचारों से ही काम चल जाय यह सोचकर उन्होंने जबरदस्ती कविता करनी प्रारम्भ कर दी। अत्यधिक सौन्दर्य पैदा होने के कारण वह कृत्रिमता को अपनाते गए, अंततः काव्य में कृत्रिमता चरम सीमा तक पहुँच गयी। आगे चलकर काव्य में प्रेरणाहीन यश के लालची कवियों का आगमन हुआ और उन्होंने निर्जीव काव्यानुकरण को ही काव्य की शक्ति मान लिया। कुछ कवियों ने इस Classical Style की भव्यता और सौन्दर्य के लिए योजना बनानी चाही किन्तु उनका यह प्रयत्न मौलिक प्रेरणा के अभाव में एक भद्‌दा अनुकरण मात्र ही बनकर रह गया। इस युग के एक साहित्यकार **डिक्टेटर जॉनसन** ने तो कविता को कृत्रिमता और परम्परा की जंजीरों में इस प्रकार जकड़ दिया कि कविता चाहकर भी फड़फड़ा न सके। इसी अत्याचार के विरुद्ध मानवात्मा ने विद्रोह का डंका बजाया और इस विद्रोह का परिणाम हमें मिला **Lyrical Ballads** में संगृहीत कविताओं के रूप में।

कवि किसे कहते हैं और कवि पद का अधिकारी कौन हो सकता है? इन प्रश्नों का ब्यौरेवार तो उत्तर नहीं मिल सकता है **Lyrical Ballads** में, किन्तु **वर्ड्सवर्थ** के यत्र-तत्र बिखरे विचार इनके उत्तर की पुष्टि करते हुए दिखायी पड़ते हैं।

वर्ड्सवर्थ के अनुसार कवि भी साधारण मनुष्य है और दैवीय शक्ति या दिव्य लोक का निवासी नहीं। जिस प्रकार साधारणतः मनुष्य अपने हृदय की बात दूसरों पर प्रकट करते हैं और दूसरों के हृदय की बात स्पष्ट जानते हैं और इसी व्यापार में व्यापकत्व की अनुभूति की इच्छा रखते हैं, यही इच्छा-रूपी लालसा ही कवि को काव्य रचना की ओर प्रवृत्त करती है किन्तु कवि में एक विशेषता होती है कि उसका हृदय स्पन्दनशील होता है। इस विशेषता के कारण वह साधारण मनुष्यों से भिन्न है। वह एक विशेष द्रष्टा है, जिसमें किसी वस्तु के वास्तविक तत्त्व और रहस्य को देखने और तत्पश्चात्

परखने की स्वाभाविक शक्ति होती है। किसी भी घटना या वस्तु का वह गम्भीर और व्यापक विवेचन कर सकता है।

कवि का मनुष्य हृदय के प्रवेगों और भावनाओं से इतना अधिक सम्बन्ध रहता है कि उसे तृण-तृण में जीवन का चिरस्पन्दन दिखायी देता है मानो सारा संसार विचित्र प्राणों के वेग पर थिरक रहा हो। कवि के लिए तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु में भी जीवन प्रवाहित होता है और यह संसार सम्वेत कण्ठ से उस आध्यात्मिक आधार-शक्ति का विजय गान करता है जिससे यह सारा संसार संचालित है। कवि प्रकृत वस्तु में अति प्रकृत-वस्तु, स्थूल में सूक्ष्म रहस्य का दर्शन करता है। इसी अति सूक्ष्म रहस्य से परदा उठाने और उसे सर्वज्ञात बनाने को उसकी लेखनी मचलती रहती है।

कवि में अधिक ऐन्द्रियता के कारण उसके अन्दर साधारण मनुष्यों से अधिक ग्रहणशीलता होती है। उसका हृदय समस्त भावों, विभावों को जल्दी ग्रहण करता है। आश्चर्य, हर्ष, विषाद, अनुराग, विजय इत्यादि भाव इतने प्रबल वेग से उसके हृदय में जागृत होते और विस्तार पाते हैं, कि वह जब तक अपने हृदय के इन भावों को अपनी लेखनी के माध्यम से दूसरों के हृदय में उतार नहीं देता उसके हृदय का भार भी हल्का नहीं होता और न ही उसके हृदय को चैन मिलता है।

यूँ तो साधारण मनुष्य भी अपने हृदय के भावों को अभिव्यक्त करते हैं किन्तु कवि में यह शक्ति साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक मात्रा में पायी जाती है। यही शक्ति कवि की प्रधान विशेषता है। यदि कवि अपने हृदय के भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहता है तो वह मूक कवि ही कहला सकता है। ऐसा कवि जो अपने अस्तित्व की पहचान न बता सके। विज्ञान और कविता दोनों के द्वारा ही सत्य की अभिव्यक्ति होती है किन्तु भिन्नता इस बात में है कि विज्ञान की अभिव्यक्ति साधारणत्व की भाषा में निर्लेप होती है और मनुष्य की भावनाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता उसका सम्बन्ध केवल बुद्धि से होता है। वहीं दूसरी ओर काव्य की अभिव्यक्ति विशिष्ट भाषा में होती है। यह हमारी इन्द्रियों और हृदय के अन्तःस्थल को गुदगुदाती है और हृदय के प्रसुप्त भावों को जाग्रत करती है। कवि की उपर्युक्त समस्त विशेषताएँ परिश्रम साध्य नहीं होतीं अपितु यह सभी विशेषताएं उसमें स्वाभाविक रूप में विद्यमान होती हैं और विकसित होती रहती हैं।

वर्ड्सवर्थ कविता की परिभाषा देते हुए कहता है कि जब मनुष्य प्रशान्त क्षणों में बैठा हो तो उसकी स्मृति के मनोवेग के फलस्वरूप कविता की उत्पत्ति होती है। कविता मनुष्य हृदय की प्रबल वेगवती भावनाओं की स्वाभाविक उमड़न का ही दूसरा नाम है। **वर्ड्सवर्थ** के शब्दों में- "Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity अर्थात् प्रबल वेगवती भावनाओं की स्वाभाविक उमड़न ही कविता का रूप धारण करती है और प्रशान्त क्षणों में स्मृत मनोवेगों से इसकी उत्पत्ति होती है।"[1] जब कवि का किसी घटना या प्रकृत वस्तु से साक्षात्कार होता है तो कवि हृदय पर इसका सहज प्रभाव पड़ता है। जब कवि प्रशान्त क्षणों में बैठा होता है तो उसकी स्मृति पटल पर अंकित घटना की स्मृति जाग जाती है यह स्मृति भावनाओं और भावों की उमड़न का रूप धारण कर कविता का रूप धारण करती है।

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 121

किसी भी वस्तु की प्रत्यक्षानुभूति रसानुभूति या काव्यानुभूति नहीं हो सकती। तात्कालिक अभिव्यक्ति में इतने तत्त्वों का समावेश रहता है कि वह पाठक के हृदय को क्रियाशील नहीं कर सकती। अतः काव्यानुभूति प्रत्यक्षानुभूति नहीं हो सकती है क्योंकि कवि का कर्तव्य भी प्रत्यक्षानुभूति कराना नहीं है यदि ऐसा होगा तो कवि अपने धर्म का पालन करने में सक्षम नहीं है।

अतः **वर्ड्सवर्थ** कहता है कि प्रत्यक्षानुभूति में काव्य सृजित नहीं हो सकता। प्रत्यक्षानुभूति करते समय तो काव्य-सृजन का अवसर ही नहीं मिलता। काव्य-प्रणयन के मानसिक व्यापार के बाद ही काव्य का सृजन हो सकता है।

कवि का हृदय अत्यन्त स्पन्दनशील और ग्रहणशील होता है। अतः जब वह किसी प्रकृत-वस्तु या घटना के सम्पर्क में आता है तो उसका हृदय प्रतिक्रिया करने लगता है। वह इतना अधिक प्रतिक्रियाशील हो उठता है कि उस घटना या प्रकृत-वस्तु के प्रति अभिभूत हो जाता है। उसमें प्रतिक्रिया का वेग आता है और चला जाता है किन्तु सृजन की शक्ति उसमें नहीं रहती। प्रतिक्रिया का वेग कवि के मन-मस्तिष्क पर अपनी गहरी छाप छोड़ जाता है अर्थात्-घटना का प्रबल आघात उसके मन पर होता है। इस आघात का परिणाम यह होता है कि कवि के मस्तिष्क में घटना की थोड़ी-सी भी स्मृति उस घटना व उससे सम्बन्धित समस्त मनोवेगों को कवि के मस्तिष्क में लाकर उपस्थित कर देती है। अनुकूल परिस्थिति पाकर प्रशान्त क्षणों में घटना या प्रकृत-वस्तु से सम्बन्धित सारी बातें बिजली के समान अंतश्चक्षु के समक्ष सारे राग, विराग, अनुराग इत्यादि भावनाओं को साथ लिए जागृत हो जाती है। कवि हृदय इन भावनाओं से इतना प्रेरित हो उठता है कि उनको अभिव्यक्ति प्रदान किये बिना उसे चैन नहीं पड़ती। कवि केवल मनोरंजन के लिए नहीं लिखता वरन् वह तो अपनी लेखनी द्वारा एक दिव्य संदेश संसार के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता है किन्तु यह सब प्रत्यक्षानुभूति के समय सम्भव नहीं लेकिन इसका गहन प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है और प्रशान्त क्षणों में जब मस्तिष्क के फ़ुरसत के क्षण होते हैं घटना की तनिक सी स्मृति जगकर उग्र रूप धारण कर काव्य का रूप ले लेती है। प्रत्यक्षानुभूति के समय काव्य-सृजन इस कारण नहीं हो पाता क्योंकि उस समय अनेक तत्त्वों के सम्मिश्रण के कारण भावनाएँ सुषुप्त अवस्था में मन के किसी कोने में दुबकी हुई रहती है उनकी जागृति किसी भी समय स्मृति या कल्पना के क्षणों में प्रबल मनोवेगों के द्वारा होती है प्रत्यक्षानुभूति के समय नहीं।

स्मृति की सदैव पुनरावृत्ति होती है। इस संदर्भ में **डॉ० देवराज उपाध्याय** का कथन है कि यह पुनरावृत्ति कभी भी शुष्क नहीं होती। आधारभूत प्रकृत-वस्तु का उसमें अंश उपस्थित रहता है। इस आधारभूत प्रकृत-वस्तु का हमारे भावों और मनोवेगों से साक्षात् सम्बन्ध रहता है। समय के साथ-साथ प्रत्यक्षानुभूति के विरोधी अवरोधक तत्त्व दूर हो जाते हैं और प्रत्यक्षानुभूति का केवल वह अंश स्मृति बनकर हमारे समक्ष उपस्थित होता है जो हमारे मनोवेगों और भावों को सजीवता प्रदान कर, प्रदान करता रहे। आगे इसी संदर्भ में उदाहरण देते हुए **डॉ० देवराज उपाध्याय** कहते हैं कि स्मृति का यह अंश केवल उतना ही होता है जितना की मिट्टी के अन्तराल में एक नन्हा-सा बीज। उस बीज में एक पूरे वृक्ष को अस्तित्व प्रदान करने की प्रेरणा होती है किन्तु उसमें अपने को वृक्ष के रूप में विकसित करने की क्षमता प्रदान करने में वायु जल व आसपास के पोषक तत्त्वों का बड़ा हाथ रहता है। इन सबके सहयोग से एक वृक्ष रूप में परिणत होने की स्वाभाविक प्रेरणा रखता है। वह अपने को वृक्ष

का रूप देने के लिए बाध्य है लाचार है। वह चाहकर भी अपने को विकसित होने से रोक नहीं पाता क्योंकि यह उसके बस की बात नहीं और वह ऐसा किये बिना रह नहीं सकता।

डॉ० देवराज उपाध्याय के अनुसार ठीक यही प्रक्रिया स्वतःप्रसूत काव्य की है। प्रकृत वस्तु या घटना का स्मृति-रूपी बीज कवि के उर्वरक-रूपी मस्तिष्क के गर्भ में कहीं दबा रहता है। मस्तिष्क के व्यापार रूपी तत्त्वों से सहायता पाकर और भावों और मनोवेगों के सहयोग से यह स्मृति रूपी बीज शनैः शनैः विकास की ओर अग्रसर होता है। यह स्मृति रूपी बीज काव्य रूपी वृक्ष में परिणत होने की शक्ति रखता है साथ ही साथ वृक्ष रूप में परिणत होने की उसमें अदम्य स्वाभाविक प्रेरणा भी है। वह मानसिक व्यापार, भावों और मनोवेगों रूपी तत्त्वों की सहायता से अपने को काव्य रूप देने के लिए बाध्य हो जाती है, लाचार हो जाती है। वह अपने को काव्य रूप देने से चाहकर भी रोक नहीं सकती क्योंकि यह उसके वश की बात है ही नहीं।

अतः स्पष्ट है कि कवि में काव्य-सृजन के लिए भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने की प्रेरणा स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती है। अपनी अभिव्यक्ति को शब्दों में बाँधकर उन्हें मूर्त रूप देने की शक्ति भी कवि के अन्दर स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहती है। इसके लिए कवि को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता।

अतः स्पष्ट है कि कविता बनायी नहीं जाती वह तो स्वयं प्रसूत होती है। किसी भी प्रकृत-वस्तु के सम्पर्क में जब कवि आता है तो कवि की सृजनात्मक प्रेरणा कवि के विचारों और भावों पर छा जाती है और क्रमशः विकसित होती हुई अन्त में कविता का रूप धारण कर लेती है।

अतः काव्य-सृजन के लिए उत्तरदायी यह सृजनात्मक प्रेरणा कवि की अपनी विशिष्टता होती है और मुख्य रूप से विद्यमान रहती है। रोमांटिक विचारधारा के जितने भी कवि हैं वह इस शक्ति को जगत् के मूल में स्थित प्रेरक शक्ति का मूल मानते हैं। यह तो युग की आत्मा की ध्वनि है जो कवि के हृदय को अपनी अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन बनाकर उसकी वाणी से अपना जयोच्चार कराती है। कवि अपने व्यक्तित्व पर उस युग की आत्मा की ध्वनि का बोझा ढोता है। अपनी वाणी से मुखरित स्वर में दिव्य संदेश देता है।

स्वतःप्रसूत स्वाभाविक काव्य के लिए अभिव्यक्ति का साधन भी वही स्वाभाविक भाषा हो सकती है, जिसका प्रयोग साधारण लोगों द्वारा दैनिक रूप से होता है। काव्य का विषय कुछ भी हो सकता है। जीवन के गम्भीर सत्यों की अभिव्यक्ति के लिए कवि ग्राम्य या नगर जीवन की किसी भी प्रकार की घटनाओं या वस्तु अपने काव्य का उपजीव्य बना सकता है।

रोमांटिक कवि आध्यात्मिकता से मण्डित होता है। हुस्ने बुतां के परदे में उसे रब का जलवा दिखायी देता है। प्रत्येक वस्तु उसे आध्यात्मिकता से परिपूर्ण दिखायी देती है। साधारण घटनाओं में जीवन की वास्तविक गति के दर्शन करता है। ब्रह्माण्ड ही उसके लिए पिण्ड है। इस जगत् के सूत्रधार और विविध लीलाओं की छिपकर डोर हिलाने वाले की खोज करता है। बाह्य इन्द्रियग्राह्य चाक्षुष सौन्दर्य रोमांटिक कवि के लिए प्रधान वस्तु है क्योंकि वह आँखें खोलकर बाह्य संसार पर दृष्टिपात करता है। स्थूल से सूक्ष्म के अभाव को सहना उसके वश में नहीं।

रोमांटिक कवि संसार के कण-कण में जीवन के स्पंदन का साक्षात्कार करता है। यही विशेषता रोमांटिक काव्य को क्लासिकल काव्य से अलग कर देती है। क्लासिकल काव्य प्रत्येक आभा से मण्डित है किन्तु अगर वह वंचित है तो जीवन के स्पन्दन से, आन्तरिक स्पिरिट से। क्लासिकल काव्य में बाहरी साज-सज्जा, सौन्दर्य सभी कुछ है किन्तु आन्तरिक जीवन की प्रेरणा का सर्वथा अभाव है। यही प्रेरणा स्थूल जगत के अन्तराल में छिपी उस दिव्य शक्ति से हमारा साक्षात्कार कराती है जो क्लासिकल काव्य के लिए आज तक रहस्य बना हुआ है। पुनर्जागृति की प्रवृत्ति को लेकर कुछ कवियों द्वारा सस्ते रहस्यवाद का प्रदर्शन भी किया गया। सनसनीखेज, आश्चर्यजनक और विस्मयवर्द्धक घटनाओं की योजना करके लोगों के कौतूहल को सस्ते ढंग से तृप्त करने की कोशिश की गयी। अतः काव्य में भूत-प्रेत और रोमांचक घटनाओं को स्थान मिलने लगा। लोगों के हृदय को चटपटे मसालों से क्षणिक उत्तेजित करना कवियों का एकमात्र ध्येय बन गया। ऐसे समय में **Lyrical Ballads** नामक काव्य संग्रह का साधारण भाषा में वर्णित होना निश्चित ही एक रोमांचक साहित्यिक घटना थी जो क्लासिकल-साहित्य से अतिकृत्रिमता को दूर करने के लिए अस्तित्व को प्राप्त हुई। अतः **Lyrical Ballads** में यह अपेक्षा की गयी कि साधारण अभिव्यक्ति द्वारा लोगों की मानसिक चटखारे लेने की प्रवृत्ति दूर होगी, मानसिक शैथिल्य दूर होगा तथा किसी वस्तु के अन्तराल तक गहराई में जाने की प्रवृत्ति बढ़ेगी।

वर्ड्सवर्थ के विरोधी आलोचकों का मानना है कि छन्द की उपस्थिति के कारण काव्य की भाषा गद्य की भाषा से अनिवार्य रूप से भिन्न हो जाती है उसका वह रूप नहीं रह जाता जो स्वाभाविक साधारण गद्य का होता है किन्तु वर्ड्सवर्थ का मानना है कि काव्य में छन्द की उपस्थिति एक विशेष उद्देश्य के कारण अनिवार्य है। छन्द काव्य-रचना को कवित्वपूर्ण बनाने में सहायता करते हैं किन्तु छन्द अनुपस्थिति में रचना की काव्योपयोगिता नष्ट हो जाती है।

मानव हृदय के विचारों की सर्वोत्कृष्ट और सशक्त अभिव्यक्ति ही कवि का उद्देश्य है लेकिन भावों की अभिव्यक्ति का साधन केवल शब्द ही नहीं होते हैं संगीत द्वारा भी अपने भावों को प्रभावोत्पादक बना सकते हैं बशर्ते संगीतात्मकता काव्य के रूप पर आच्छादित न हो जाय। यदि काव्य को संगीत का सहारा मिल जाता तो काव्य के प्रमोद में अपार वृद्धि हो सकती है। काव्य की रक्षा और उसके प्रभाव में वृद्धि के लिए व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि काव्य के स्वाभाविक संगीतात्मक रूप को उभारकर संगीतमय बनाया जाय। काव्य में यह कार्य छन्द और तुक के द्वारा ही सम्पन्न होता है। अतः छन्द काव्य का स्वाभाविक अंग है।

छन्दों के प्रयोग के कारण दुःखात्मक अनुभूतियाँ भी आनन्द प्रदान करनेवाली बन जाती है। छन्दों की प्रवृत्ति चित्त-प्रसादिनी होती है और इनमें संगीतात्मकता भी होती है। अतः दुख के भाव कवि की क्रियात्मक प्रतिभा और छन्दों की संगीतात्मकता के कारण आनन्द प्रदान करने वाले बन जाते हैं किन्तु यह सभी स्वतःप्रसूत होती हैं इनके लिए कवि को प्रयत्न नहीं करना पड़ता है।

वर्ड्सवर्थ के विरोधी उसके काव्य की आलोचना करते हुए कहते हैं कि **वर्ड्सवर्थ** के काव्यीय विचार तुच्छ हैं। कहीं कहीं तो इतने तुच्छ और छिछले हो गये हैं कि उनको पढ़कर हँसी आती है किन्तु **वर्ड्सवर्थ** दोषारोपण का स्पष्टीकरण करते हुए कहता है कि काव्यवस्तु की साधारणता और साधारण अभिव्यक्ति के कारण ही आलोचकों को यह भ्रम हो गया होगा, वास्तव में ऐसा है नहीं।

वर्ड्सवर्थ का साधारण कथा भाग स्वाभाविक घटनाओं के माध्यम से एक दिव्य संदेश की अभिव्यक्ति करता है। **वर्ड्सवर्थ** के काव्य का उद्देश्य ही साधारण घटनाओं के माध्यम से जीवन की आन्तरिक गति अथवा जीवन के आन्तरिक स्पन्दन का दर्शनमात्र है।

काव्य के दो प्रकार के आलोचक होते हैं। पहला पक्ष काव्य के सौन्दर्य तथा उक्ति को महत्त्व देता है। क्लासिकल आलोचकों का एक बड़ा अंश इस मत का पक्षपाती था किन्तु दूसरा पक्ष अभिव्यक्ति या उक्ति के पीछे छिपे सत्य को महत्त्व देता है। इस पक्ष के आलोचकों का मानना है कि भावों की गहराई, व्यापकता और उच्चता में ही काव्य का सौन्दर्य निहित है। यदि काव्य गाम्भीर्य, व्यापकता और उच्चता लिये नहीं होगा तो शब्द केवल झाँकी बनकर रह जायेंगे। वह पाठक को साक्षात् आनन्द प्रदान कर गम्भीर तृप्ति नहीं दे सकते। प्रकृति सृजनात्मक प्रेरणा के वशीभूत वस्तुओं को निम्नतर अवस्था से उच्चतर की ओर विकसित करने में सदैव प्रयत्नशील रहती है। विकास ही प्रकृति का मूल मंत्र है। सृजनात्मक अदम्य प्रेरणा ही कर्तव्य का मूल मंत्र है। अतः कविता केवल अभिव्यक्ति ही नहीं, एक दिव्य संदेश देती है, जीवन को उच्चतर अवस्था में ले जाने का उपक्रम है। अतः **वर्ड्सवर्थ** को हम आलोचकों की इसी श्रेणी में रखते हैं क्योंकि **वर्ड्सवर्थ** यह मानता था कि वर्णित कथा अथवा वस्तु विषय के द्वारा कविता का महत्त्व नहीं आँका जा सकता। कविता का महत्व उसके द्वारा प्रकृति की आन्तरिक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति में है। अभिव्यक्ति के अन्तराल में छिपे सत्य में है।

डॉ० देवराज उपाध्याय और सैमुअल टेलर कॉलरिज

कॉलरिज रोमांटिक युग का प्रवर्तक था। वह दार्शनिक, कवि, आलोचक था। **कॉलरिज** ने बड़ी ही उच्चकोटि की कविताएँ लिखी हैं और साथ ही साथ अत्यन्त दार्शनिक व उत्कृष्ट आलोचनाए भी की हैं। **कॉलरिज** की पुस्तक **Biographia Literaria** आज भी पाश्चात्य आलोचना की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। इसमें **कॉलरिज** ने कविता सम्बन्धी आलोचनात्मक निबन्ध तथा **शेक्सपीयर** व अन्य कवियों के बारे में उत्कृष्ट दार्शनिक आलोचनात्मक लेख लिखा है। **Biographia Literaria** में **कॉलरिज** ने **शेक्सपियर** सम्बन्धी आलोचनात्मक लेखों में अपने उत्कृष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों को मौलिक व सरलतम रूप देने की कोशिश की है।

कॉलरिज ने आलोचना के क्षेत्र में महारत हासिल की थी। वह आलोचना सम्बन्धी सिद्धान्तों की गहराई को जानता था बल्कि अगर यह कहा जाय कि उसने आलोचना की नब्ज़ पहचान ली थी तो गलत नहीं। आलोचना के सम्बन्ध में स्वयं **कॉलिरज** लिखता है -

"The ultimate end of criticism is much more to establish the principle of writing than to furnish rules how to pass judgement on what has been written by others."

अर्थात् आलोचना का परम ध्येय यह है कि वह लेखन के परम सिद्धान्तों का प्रतिपादन करे। इतना ही नहीं दूसरों के लेख पर निर्णय देने के नियमों का उल्लेख करे।"[1]

कॉलरिज से पूर्व किसी भी आलोचक ने आलोचना के भिन्न-भिन्न अंगों की व्याख्या के अतिरिक्त सृजन कार्य की गहराई व सृजन-क्रिया के मूल स्रोत मानसिक अवस्था पर इतनी गहराई से तर्कपूर्ण व

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 135

बुद्धिपरक विचार नहीं किया था। किसी विद्वान् ने तो **कॉलरिज** की श्रेष्ठता इस प्रकार व्यक्त की है-

"Aristotle is the mathematician of criticism while Coleridge is the high priest."

अर्थात् "**अरस्तू** आलोचना का गणितज्ञ है पर **कॉलरिज** उसका उच्च पुजारी।"[1] **वर्ड्सवर्थ** के काव्य सिद्धान्तों से **कॉलरिज** का मतभेद था। **कॉलरिज शेक्सपियर** की कविताओं से ज्यादा प्रभावित था। कविता क्या है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए भी उसने प्रसंगवश **शेक्सपियर** की कविताओं का उल्लेख किया है और **शेक्सपियर** की कविताओं को न्याय दिलवाया है।

कॉलरिज के अनुसार गद्य-रचना का उपकरण अर्थात् पुनरावृत्ति, लय, एकतानता अथवा तुक इन्हीं सबसे कविता की भी रचना होती है। हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि गद्य-रचना के उद्देश्य से काव्य-रचना का उद्देश्य भिन्न हो और इसी क्रम में इन उपकरणों की योजना भी की गई हो।

कुछ रचनाएँ ऐसी होती हैं जिनका उद्देश्य सत्य की अभिव्यक्ति होता है और उसमें आनन्द स्वयमेव उत्पन्न हो जाता है किन्तु इसके विपरीत कुछ रचनाओं का उद्देश्य आनन्दोद्रेक करना होता है। यह बात दूसरी है कि उससे किसी तथ्य या सत्य की अभिव्यक्ति स्वमेव हो जाये, किन्तु काव्य रचना का उद्देश्य साक्षात् आनन्द की प्राप्ति ही है। वास्तव में मानव मन प्रकृत-वस्तु के ज्यों के त्यों रूप से आनन्दित नहीं होता वरन् वह उसमें अपनी कल्पना का समावेश कर उसे तोड़-मरोड़ कर दूसरे ही रूप में जो उसकी कल्पना में हो, देखकर आनन्दित होता है।

काव्य की परिभाषा देते हुए **कॉलरिज** कहता है कि काव्य एक विशिष्ट रचना है जो विज्ञान से सर्वथा विपरीत है, भिन्न है, क्योंकि काव्य से आनन्द की प्राप्ति होती है और यही काव्य का उद्देश्य भी है कि वह साक्षात् आनन्दोद्रेक करे। सत्य की उपलब्धि साक्षात् आनन्द की श्रेणी में नहीं आती। साक्षात् आनन्द हम उसे कह सकते हैं जिस आनन्द का रसपान करने से हमारी क्षुधा शान्त हो और हमें संतुष्टि मिले वही साक्षात् आनन्द है लेकिन **कॉलरिज** यह मानता है कि काव्य अपने इस उद्देश्य अर्थात् आनन्दोद्रेक उत्पन्न करना की पूर्ति सुन्दरता के माध्यम से ही करता है अर्थात् कोई भी वस्तु इसलिए सुन्दर नहीं कही जा सकती कि आनन्द प्रदान करती है वरन् वह आनन्दोद्रेक करती है अतः सुन्दर है। **कॉलरिज** के अनुसार सुन्दरता की अपनी जाति ही अलग होती है। किसी भी प्रकृत-वस्तु के कम या अधिक सुन्दर होने का प्रश्न ही नहीं उठता। सुन्दरता तो केवल सुन्दर है। सुन्दरता का दर्शन हमें वहीं होता है जहाँ बहुत्व अपने स्वरूप का अस्तित्व कायम रखते हुए एक बड़े एकत्व में लीन हो जाता है।

कॉलरिज उन रचनाओं को काव्य के पद पर प्रतिष्ठित नहीं करता जिनकी कुछ पंक्तियाँ अथवा उक्तियाँ रचना के अन्य अंशों से समन्वय नहीं रखतीं। वह अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं और एक दूसरे से अलग दिखायी पड़ती हैं और सब पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। असंतुलित रचना को काव्य नहीं कहा जा सकता। काव्य में सभी अंशों की रचना इस प्रकार होनी चाहिए कि सभी काव्यांशों में पर्याप्त सन्तुलन और समन्वय हो।

कवि की प्रतिभा से ही काव्य की विशिष्टता उजागर होती है। जितनी अधिक प्रतिभा कवि के अन्दर होगी, काव्य-रचना उतनी ही विशिष्टता लिये होगी। यदि हम कवि की प्रतिभा की परख नहीं कर सके तो हम उसके काव्य के साथ अन्याय करते हैं, न्याय नहीं कर सकते हैं। अतः काव्य

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य शास्त्र,* पृ० 135

के प्रति न्याय-अन्याय की विभाजन-रेखा रेखांकित करना भी कवि की प्रतिभा का कार्य है क्योंकि मनुष्य अन्तःकरण के विविध व्यापार, उनका स्वरूप और कार्य तथा मानव-मस्तिष्क की सम्पूर्ण तहों तक पहुँचना अभी तक किसी भी मनोवैज्ञानिक के वश का कार्य नहीं हो पाया है किन्तु मानव आत्मा की सम्पूर्ण क्रियाओं को एक आदर्श कवि ही प्रबुद्ध रूप दे सकता है। इस प्रबुद्धता के कारण ही यह क्रियाएँ एकसमान और सापेक्ष समन्वित रूप में एक लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग की ओर निरन्तर अग्रसर रहती हैं। यहाँ विरोध की भावना समाप्त हो समन्वय के विचार जागृत करती हैं। कवि की इस प्रतिभा को **कालरिज** ने Imagination का नाम दिया है। Imagination के कार्यों का वर्णन करते हुए **कॉलरिज** कहता है कि, "इसका काम समन्वय की स्थापना करना है- समन्वय एकरूपता का विविधता के साथ, साधारण का विशेष के साथ, विचार का मूर्ति के साथ। यद्यपि यह कृत्रिमता और अकृत्रिमता को एक तान कर देती है तो भी स्वाभाविकता की प्रमुखता बनाये रखती है, कला की नहीं।"[1]

अतः प्रतिभा का कार्य है कि वह विविध प्रकृत वस्तुओं में से साधारणत्व और शाश्वत को मानव आत्मा के सामने सविकल्प रूप में इस प्रकार सँजोती है कि आत्मा उसे सजातीय वस्तु समझ-कर स्वीकार कर लेती है। यदि साधारण मनुष्य झूठ बोले तो हम उसे फौरन पकड़ लेते हैं किन्तु कवि की यह सहज प्रतिभा झूठ को हमारी आँखों के सामने इस प्रकार खड़ा कर देती है कि उसके झूठ को पकड़ना हमारे वश की बात नहीं वरन् उल्टे हम उस झूठ को सजातीय सत्य समझ आँखें मूँदकर ग्रहण करते हैं। कवि की प्रतिभा से युक्त झूठ की तह में हमें एक सर्वव्यापक सत्य का साक्षात्कार होता है। **कॉलरिज** स्वस्थ विचारों को कवि प्रतिभा का शरीर मानता है,

"Good SENSE is the body of poetic genius, FANCY its DRAPERY, MOTION its LIFE and IMAGINATION the soul that is every where and in each; and forms all into one graceful and intelligent whole."

अर्थात् "स्वस्थ विचार कवि प्रतिभा का शरीर है, कपोल-कल्पना उस पर की गई बेलबूटे की नक्काशी है, वेगमयता उसका जीवन है, कल्पना उसकी आत्मा है जो सर्वत्र और सबमें निवास करती है और सबको एक सुन्दर और बोधगम्य रूप देती है।"[2]

कॉलरिज ने **शेक्सपियर** की रचनाओं का मूल्यांकन करते समय ही काव्य के सिद्धान्तों को भी प्रतिपादित किया है और उन्हीं के आधार पर **शेक्सपीयर** की रचनाओं को मूल्यांकित किया है। रोमांटिक काव्य के मूल सिद्धान्तों में स्वतःप्रसूत अदम्य प्रेरणा को **कॉलरिज** काव्य की जननी मानता है। यह स्वतः प्रसूत अदम्य प्रेरणा किसी बाहरी प्रभाव के वशीभूत नहीं होती वरन् यह तो कवि के मन की आवाज़ उसके अन्तःकरण की धड़कनों की आवाज है। यह हृदय में स्वयं जन्म लेने वाले भावों से पोषित होती है इसमें वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता रहती है। इस परिकल्पना को अनुभव करने के क्षणों में कवि की जो मानसिक दशा अथवा मानसिक स्थिति होती है वही कवि के जीवन का सार है, तत्त्व है।

काव्य को व्यक्तिगत बातों और परिस्थितियों से पृथक् रखना चाहिए, इस कार्य में प्रतिभा ही

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 135
2. वही, पृ० 140

अपना योगदान देती है। **कॉलरिज** के शब्दों में :

"A second promise of genius is the choice of subjects very remote from the private interest and circumstances of the writer himself."

अर्थात् "प्रतिभा का दूसरा लक्षण यह है कि वह (काव्य के लिए) लेखक की व्यक्तिगत बातों और परिस्थितियों से पृथक् वस्तु का निर्वाचन करती है।"[1]

व्यक्तिगत स्वार्थमूलक अनुभूतियाँ विशेषकर लालच, प्रतिशोध, कृतज्ञता आदि को साहित्य से पृथक् ही रखना चाहिए किन्तु इनका सार्वजनीन रूप साहित्य में मान्य हो सकता है क्योंकि इससे भावों का साधारणीकरण होता है और यह साहित्य की अत्यन्त आवश्यक आवश्यकता है।

कॉलरिज कहता है कि काव्य में वर्ण्य-वस्तु के निर्वाचन और उसके प्रतिपादन में तटस्थता होनी चाहिए। व्यक्तिगत अनुभूतियाँ सार्वजनीन हो निर्वैयक्तिक हो जायँ और वर्ण्य-वस्तु के प्रतिपादन में या व्यक्तिगत अनुभूतियों के प्रतिपादन में वैयक्तिकता की छाप भी नहीं होनी चाहिए। जिस प्रकार ईश्वर प्रकृति व संसार की ओट में छिपा रहता है उसी प्रकार कवि को भी रचना की ओट में छिपे रहना चाहिए। कोरा आत्मनिवेदन भावों का निर्वैयक्तिकरण नहीं करता है, जबकि उसमें निर्वैयक्तिकरण और भावों की सार्वजनीनता आनी चाहिए।

साहित्य में यथार्थ का क्या महत्त्व है और साहित्य में यथार्थ का क्या स्थान है? इन प्रश्नों पर भी **कॉलरिज** ने विचार किया है। हम यथार्थवाद और रोमांसवाद को एकदम भिन्न वस्तु समझते हैं जबकि सच्चाई यह नहीं है और ना ही रोमांटिक काव्यधारा के कवि ऐसा मानते हैं। रोमांटिक साहित्य विचारधारा ही कृत्रिमता, असत्यता व झूठ के विद्रोह-स्वरूप आई तो भला यहाँ यथार्थ से विद्रोह कैसा? रोमांटिक कवि तो यथार्थ को रोमांसवाद का सार तत्त्व मानते हैं क्योंकि वह सभी स्वाभाविक और यथार्थता के पक्षपाती थे।

कॉलरिज भी काव्य में यथार्थ के महत्त्व को भली प्रकार समझता था। कला प्रकृति का अनुकरण करती है किन्तु वह साधारण अनुकरण और काव्योचित अनुकरण को भिन्न समझता था। काव्य में यथार्थ चित्रण सर्वथा उचित है। ऐसी घटना जो कभी घटी ही नहीं उसकी कल्पना तो हम आसानी से कर ही नहीं सकते। अतः विषय का यथार्थ से सम्बन्ध होना ही चाहिए। यथार्थ और कल्पना का मिश्रित रूप ही काव्य का विषय होना चाहिए। काव्य-योजना करते समय कलाकार चाहे जहाँ से और जिस रूप में अपनी कृति आरम्भ करे उसे इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि भिन्नता में अभिन्नता और अभिन्नता में भिन्नता अवश्य ही वर्तमान होनी चाहिए, असमानता में समानता और समानता में असमानता मिश्रित होनी चाहिए।

विद्वानों ने कला को प्रकृति का दर्पण माना है, साथ ही, कला को प्रकृति का अनुकरण भी कहते हैं अर्थात् प्रकृति की अनुकृति ही कला है। **कॉलरिज** ने प्रकृति और अनुकृति दोनों ही शब्दों को अपने विचार का विषय बनाया है। **कॉलरिज** का कथन था कि प्रकृति की समस्त रेखाओं की अनुकृति के स्थान पर केवल सौन्दर्य की अनुकृति की जाये। विविधता की एकता में और बहुत्व में

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य शास्त्र,* पृ० 141

एकतत्त्व में ही मूलरूप से सौन्दर्य विराजमान है। आन्तरिक प्राणतत्त्व और सुडौलता के समन्वय में सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। सौन्दर्य की भा॰ ॥ स्वार्थ से परे होती है और कभी-कभी स्वार्थ विरोधी पदार्थों में भी आनन्द का सृजन करती है। सौन्दर्य मस्तिष्क के लिए उतना ही आवश्यक है जितना नेत्रों के लिए ज्योति। जब प्रतिभा और कल्पना मिलकर रचनात्मक और स्वाभाविक क्रियाएँ उत्पन्न करती हैं और जब उसमें चाक्षुष अथवा कर्ण प्रतीति भी अपने को समर्पित कर सामंजस्य पैदा करती है तभी सुन्दरता का जन्म होता है। यही सुन्दरता मानस को तुष्टि प्रदान करती है।

रोमांटिक युग का प्रवर्तक होने के कारण **कॉलरिज** वैयक्तिक अनुभूतियों और भावों को अत्यधिक महत्व देता था किन्तु इनके नियंत्रण हेतु वह बुद्धितत्त्व की आवश्यकता से भी इन्कार नहीं करता। वह कहता है कि बुद्धितत्त्व ही काव्य के ऊपर नियंत्रण रख सकता है। विचारों की गम्भीरता और शक्तिमत्ता का काव्य में एक विशिष्ट स्थान है और यह बुद्धितत्त्व से ही सम्भव है अन्यथा कवि प्रतिभा के हाथ की कठपुतली मात्र ही रह जायेगा किन्तु बुद्धितत्त्व के प्रति अत्यधिक आत्म निवेदन भी नहीं होना चाहिए। नहीं तो कहीं ऐसा न हो कि बुद्धि विचार करती रह जाये और एक दिव्य उच्च कोटि के सृजन का अवसर ही हाथ से निकल जाय।

वर्डसवर्थ के काव्य सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन करते समय **कॉलरिज** ने ग्राम्य जीवन की काव्यात्मक उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला है। वह **वर्डसवर्थ** से इस विषय पर गहरा मतभेद रखता था। **वर्डसवर्थ** ने निम्न ग्रामीण जीवन के प्रशंसा-गीत गाये हैं और साथ ही साथ वह यह भी मानता है कि इसी ग्रामीण अवस्था में हृदय की भावनाओं को फलने-फूलने का अवसर अधिक मिलता है, **कॉलरिज** के अनुसार चिन्तन का विषय है। यदि **वर्डसवर्थ** की कविताओं पर पुनर्विचार किया जाये तो उसके नाटकीय काव्य- The Brothers, Miceael, Ruth, The Mad Mother इत्यादि निम्न ग्रामीण जीवन से नहीं लिए गये हैं। उनकी भाषा, व्यवहार, विचार और रहन-सहन कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के कारण इस प्रकार की है। यदि वह नगरनिवासी होते तो भी उनकी भाषा व्यवहार, विचार, रहन-सहन इसी प्रकार का होता। **कॉलरिज** इसके दो कारण बताते हैं। प्रथम तो यह कि जरा-सी भी आर्थिक स्वतंत्रता मनुष्य को दासता और शोषण से मुक्ति तो दिला सकती है किन्तु ऐश्वर्य और विकास का अवसर नहीं देती। दूसरा कारण है परिश्रम और धार्मिक शिक्षा। अतः यदि कोई भी मनुष्य परिश्रमी, धार्मिक, मितव्ययी हो और उस पर उसे थोड़ी-सी स्वतंत्रता भी प्राप्त हो तो फिर ऐसे मनुष्य की भाषा और विचारों पर ग्राम या शहर की भाषा या विचारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कॉलरिज के अनुसार स्वस्थता, सूक्ष्मता मनुष्य के विचारों में और हृदय में पवित्र भावनाएँ प्रकृति के गम्भीर रहस्यों को स्पष्टता से हृदयंगम करने की प्रवृत्ति आदि प्रकृति के साहचर्य या प्रकृति के सम्पर्क से अवश्य ही प्रमुख होती है किन्तु उसके लिए थोड़ी शिक्षा और संवेदनशीलता दोनों ही आवश्यक हैं।

वर्डसवर्थ का यह मानना है कि एक ग्रामीण जिन प्रकृत वस्तुओं के साहचर्य या सम्पर्क में जीवन व्यतीत करता है उन्हीं के द्वारा भाषा की श्रेष्ठता का निर्माण होता है किन्तु **कॉलरिज** का इस विषय पर विचारों में भेद है। उसके अनुसार एक ग्रामीण किसान अशिक्षित होता है और अशिक्षा के कारण उसका भाषा-कोश अत्यन्त संकुचित होता है। शब्दों के अभाव में प्रकृति-चिन्तन के मानसिक व्यापारों की ही अभिव्यक्ति नहीं हो पाती है। वे केवल कुछ ही शब्दों और भावों को मूर्तिमान रूप दे सकते

हैं, शेष की अभिव्यक्ति के लिए अस्पष्ट शब्दावली का ही प्रयोग होता है। मनुष्य के चेतन मस्तिष्क के परिणामस्वरूप ही श्रेष्ठ भाषा का निर्माण हुआ है। भाषा स्वाभाविक या प्राकृतिक रूप से जन्म नहीं लेती। मनुष्य बहुत ही सोच-समझकर चेतन मस्तिष्क के द्वारा चिन्तन कर अपनी काल्पनिक वस्तुओं, क्रियाओं और व्यापारों को एक नाम देता है इसी क्रम में भाषा के शब्द भण्डार में वृद्धि होती जाती है। काव्य, साहित्य, दर्शन और वैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रयुक्त अभिव्यंजनात्मक शब्द मानव मस्तिष्क के चेतन व्यापार का ही परिणाम है। ध्वनि तो पशु-पक्षी भी करते हैं, किन्तु उस ध्वनि को शब्द नहीं कहा जा सकता क्योंकि ध्वनियों का निर्माण स्वभावजन्य नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ करती हैं मानव चेतन मस्तिष्क नहीं।

वर्डसवर्थ ने काव्य में ग्रामीण मनुष्यों की वास्तविक भाषा के प्रयोग का सुझाव दिया है किन्तु वास्तविक भाषा में वस्तुतः शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है। प्रत्येक मनुष्य की भाषा देश, काल, वातावरण, उसके ज्ञान और व्यवसाय पर निर्भर कर अलग-अलग रूप लिये होती है किन्तु यदि उनकी भाषा को वास्तविक न कहा जाय ऐसा नहीं। प्रत्येक मनुष्य की भाषा वास्तविकता लिये हुए भी भिन्न होती है। व्यक्ति की वैयक्तिकता, वर्ग का साधारण धर्म तथा सार्वभौमिक प्रयोग के शब्द और वाक्य इन्हीं तीन तत्त्वों का भाषा निर्माण में प्रमुख योगदान रहता है किन्तु यदि भाषा के लिए हम वास्तविक भाषा के स्थान पर सर्वसाधारण की भाषा शब्द प्रयुक्त करें तो अधिक समीचीन होगा क्योंकि सर्वसाधारण की भाषा तो तनिक ही परिष्कार और संशोधन के बाद गढ़ी जा सकती है किन्तु ग्रामीण किसान की भाषा को काव्य के लिए उपयोगी बनाने के लिए अत्यधिक परिष्करण, संशोधन, परिमार्जन और परिवर्तन की आवश्यकता होगी। इतने अधिक परिवर्तन संशोधन और परिष्करण के बाद तो किसी भी वर्ग की भाषा को काव्योपयोगी बनाया जा सकता है।

वर्डसवर्थ बाद में अपने कथन की व्यापकता की सीमा-निर्धारण भी स्वयं करते हुए कहते हैं कि किसानों की उस भाषा को काव्योपयोगी बनाया जा सकता है जो कि प्रदीप्त क्षणों में जन्म ले किन्तु **कॉलरिज** इस विषय पर भी **वर्डसवर्थ** से गहरा मतभेद रखते हैं। **कॉलरिज** का कथन है कि हर्ष, शोक या क्रोध के समय किसी व्यक्ति की भाषा कौन सा रूप लेकर जन्मेगी यह नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की मानसिक सम्पन्नता और उसका शब्द भण्डार भिन्न होता है, मानसिक धरातल भिन्न होता है। यदि कुछ समय के लिए ग्रामीण किसान की दैनिक भाषा के अनुकरण सिद्धान्त को मान भी लिया जाय तो हम कुछ ही शब्दों के बारम्बार प्रयोग को भाषा का अनुकरण नहीं कह सकते। व्याकरण का ज्ञान तथा वाक्य विन्यास में उद्देश्य और विधेय का संस्थान और वाक्य संस्थान क्रम की ओर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। ग्रामीणों की भाषा के वाक्य ऊबड़-खाबड़ व एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं होते इसी कारण उनमें शिथिलता होती है। काव्य में शिथिलता का अर्थ होता है कि यह काव्य के आनन्द में उसी प्रकार अवरोध उत्पन्न करती है, जिस प्रकार निरन्तर गति की ओर बढ़ती गाड़ी के मार्ग में मार्ग अवरोधक उसकी गति को कम कर देते हैं।

भाषा के साथ छन्दों का प्रयोग इस विषय पर भी **कॉलरिज** के अपने स्पष्ट और तर्कपूर्ण विचार हैं। **वर्डसवर्थ** मानता था कि गद्य और पद्य की भाषा में कोई अन्तर नहीं है यत्र-तत्र केवल छन्दोबद्धता को छोड़कर किन्तु **कॉलरिज** का सिद्धान्त एक बार पुनः इसका विरोध करता है। छन्दों में अवस्थित तुक, लय, यति, गति, विराम आदि तत्वों के कारण भाषा में इन तत्त्वों का समावेश नहीं होता अतः

भाषा निलंकृत और साधारण तथा सादगी लिये होती है और खटकती भी नहीं है। हमारे आध्यात्मिक जीवन की विशिष्ट माँग के फलस्वरूप विशिष्ट भाषा के द्वारा छन्दों की उत्पत्ति होती है अतः गद्य और पद्य की भाषा कभी एक-सी नहीं हो सकती। छन्दयुक्त भाव दीप्तिमान और आकर्षित होते हैं और पाठकों का ध्यान बरबस ही अपनी ओर खींचते हैं। छन्द कभी तो पाठक के कौतुहल को जागृत करते हैं और कभी शान्त। इस प्रक्रिया में भावों के आदान-प्रदान का क्रम चलता रहता है। सूक्ष्म रूप में यह अपना आभास चेतन-मस्तिष्क को भी नहीं करा सकते किन्तु सम्मिलित रूप में काफी बड़े हो जाते हैं और इनका सामूहिक प्रभाव ही दृष्टिगोचर होता है। अतः भाषा एक ही नहीं रहती उनमें अनिवार्य अन्तर आ जाता है।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने दोनों ही कवियों के दृष्टिकोणों को सटीक बताया है और वह किसी एक कवि के पक्ष में अपना निर्णय नहीं दे पाते हैं। **कॉलरिज** के अनुसार छन्द के कारण काव्य की भाषा में सुन्दरता बढ़ती है और वह आलंकारिक और सुसज्रित हो जाती है, वहीं दूसरी ओर **वर्डसवर्थ** के अनुसार छन्दों की सृष्टि भावों की उग्रता और उफान शान्त करने के लिए होती है जिसके कारण भाषा अस्वाभाविकता से मुक्त होकर सीधी-सादी अभिव्यक्त होगी। छन्द का काम हृदय की शान्ति की अभिव्यक्ति में योगदान करना है।

कॉलरिज ने अपनी पुस्तक "Biographia Literaria" में **वर्डसवर्थ** की कविता के गुण-दोष विवेचन के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि आलोचना कैसे की जाती है? आलोचना के मूलभूत सिद्धान्त भी **कॉलरिज** की इस पुस्तक के 22वें अध्याय में किये गये विवेचन से ही ज्ञात हो सकते हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय, कॉलरिज के द्वारा दिये गए आलोचना के इन मूलभूत सिद्धान्तों से अत्यधिक प्रभावित हैं तथा हिन्दी आलोचना के गिरते स्तर से चिन्तित वह हिन्दी आलोचना के विशेषज्ञों को **कॉलरिज** की पुस्तक "Biographia Literaria" के 22वें अध्याय को पढ़ने का सुझाव भी देते हैं। इस अध्याय में यद्यपि **कॉलरिज** ने **वर्डसवर्थ** की कविताओं में भाषा की शिथिलता व गँवारूपन का उल्लेख किया है किन्तु वह कहता है कि **वर्डसवर्थ** के काव्य की भाषा तुरन्त ही अपने प्रकृत रूप को प्राप्त हो गौरवभूमि की ओर लौट आती है।

कॉलरिज की पुस्तक Biographia Literaria के 22वें अध्याय को पढ़ने और विचार मनन के बाद **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने आलोचना के कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, जो निम्न हैं।

सर्वप्रथम **कॉलरिज** के मतानुसार **डॉ० देवराज उपाध्याय** अपनी पुस्तक **रोमांटिक साहित्य-शास्त्र** में लिखते हैं कि यदि काव्य की शैली में अवांछनीय और आकस्मिक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो जाये तो ऐसे में हृदय की दशा विचित्र हो जाती है। हृदय का भाव जो एक प्रवाह व गति से बहता जा रहा था उसे आकस्मिक मोड़ लेना पड़ता है, जिससे काव्य में शिथिलता उत्पन्न होती है। शिथिलता के कारण पाठक कष्ट का अनुभव करता है। यह कष्ट काव्य की रसानुभूति में साधक होता है।

द्वितीय, काव्य ऐसा होना चाहिए कि उसका उद्देश्य साक्षात् आनन्दोद्रेक करना हो सत्य का प्रतिपादन नहीं। अतः लेखक को किसी भी घटना के विस्तारपूर्ण वर्णन में अपना समय व्यर्थ व्यतीत नहीं करना चाहिए। घटनाएँ जीवन की सार्थकता लिए हुए हों वरन् काव्योपयोगी हों। अतः स्थूल इतिवृत्तात्मकता से कवि को परहेज करना चाहिए। **कॉलरिज** के शब्द इस सम्बन्ध में विचारणीय हैः

''Truth narrative and past, is the idol histonans (who worship deal things) and truth operative and by efffects continually alive, is mistress of poet, who had not her existence in matter but in reason.''

अर्थात् ''ऐतिहासिक मृत वस्तु की पूजा करता है अतः वर्णनात्मक अतीत उसका आदर्श हो सकता है। पर कवि क्रियात्मक और प्रभावों में सजीव सत्य का सेवक होता है और इस सत्य का निवास स्थूल द्रव्य में नहीं पर बुद्धिगम्यता में होता है।''[1]

ऐसी रचनाएँ जिनका उद्देश्य आनन्दोद्रेक करने के स्थान पर सत्य का प्रतिपादन करना होता है वह साहित्यिक ध्येय से अलग मार्ग की ओर बढ़ जाती हैं और साक्षात् रस का परित्याग कर देती हैं अतः इस प्रकार का दोष काव्य में नहीं आना चाहिए अन्यथा काव्य आलोचना का पात्र हो त्याज्य हो जाता है।

तीसरे प्रकार का दोष भी काव्य में पाया जाता है जिसे हम मानसिक स्फीति या Mental Bombast कह सकते हैं। साधारण-सी तुच्छ वस्तु का अत्यन्त अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन, छोटी सी तुच्छ वस्तु में विराट् रहस्य का दर्शन कर उसे उसी रूप में वर्णित करना मानसिक-स्फीति या Mental Bombast कहलाता है। यह दोष प्रतिभावान व्यक्तियों में ही पाया जाता है। अतः किसी भी प्रकृत वस्तु का बढ़ा-चढ़ाकर ऐसा वर्णन नहीं होना चाहिए कि वह असत्य लगने लगे।

कॉलरिज कल्पना को कविता का रहस्य, शक्ति, जननी मानते हैं। कल्पना को **कॉलरिज** ने विधायक कल्पना के नाम से पुकारा है। अंग्रेजी में इसे Imagination कहा गया है जो कि लैटिन धातु का शब्द है। रूपों की सृष्टि करना इसका तात्पर्य है।

कल्पना को जो कुछ भी धरोहर रूप में प्रकृति से मिला उसे उसने मनुष्य को लौटा दिया। प्रकृति और चेतन मस्तिष्क की समानधर्मिता के कारण ही काव्य का सृजन होता है। कलाकार की कल्पना अपनी ओर से प्रकृति में भावों का समिश्रण करती है केवल उतना ही मिश्रित करती है जितना प्रकृति उसे सहज भार से सँभाल सके और प्रकृति से उतना ही ग्रहण करने की चेष्टा करती है जितना कि मानव मस्तिष्क में ग्रहण करने की क्षमता है।

कॉलरिज कल्पना की दो श्रेणियाँ निश्चित करते हैं। प्रथम आद्या कल्पना या Primary Imagination यह प्रकृत वस्तु की ऐन्द्रिय प्रतीति को ज्ञानगम्य बनाती है, जबकि दूसरी श्रेणी की कल्पना जिसको प्रतिनिधि कल्पना या Secondary Imagination कहते हैं यह प्रकृत-वस्तु को तोड़ती है, छिन्न-भिन्न करती है और फिर अपनी इच्छानुसार उनको सृजनात्मक रूप देती है। आद्या की प्रति ध्वनि मनुष्य की इच्छा की सहचरी है। यह आत्मा और प्रकृति में समान रूप से स्थित रहती है। इसकी अवस्थिति के कारण कवि प्रकृत-वस्तु का आदर्शीकरण कर उसका मनन-चिन्तन कर सकता है तथा इच्छानुसार रूप प्रदान कर सकता है।

डॉ० देवराज उपाध्याय और जॉन रस्किन

जॉन रस्किन उस समय का विद्वान् था जबकि रोमांटिक साहित्य की बाढ़ में उतार आ चला था। अतः **रस्किन** ने क्लासिकल साहित्य के मूलभूत काव्य-सिद्धान्तों को भली प्रकार समझा, परखा

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र*, पृ० 163

और तत्पश्चात् पर्याप्त मनन-विश्लेषण के पश्चात् ही उसने अपनी ओर से कुछ सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे। **रस्किन** ने ही सर्वप्रथम चाक्षुष और गठनकारी कलाओं के मूल्यांकन और उनका महत्त्व निर्धारण करने के लिए इन कलाओं के ऊपर पर्याप्त विश्लेषण और गवेषणात्मक विचार कर कुछ सिद्धान्तों की स्थापना की थी। इन कलाओं में अपार, अप्रतिहत और सीधे मन पर आघात करने वाली शक्ति से सम्बन्धित करनेवाले जीवन-दर्शन की विवेचना की है। **रस्किन** कहता है कि साहित्यालोचन का क्षेत्र कला समालोचना के क्षेत्र से अधिक समृद्ध एवं विस्तृत है। इसका कारण वह सुझाता है कि साहित्य पर शब्दों के द्वारा कुछ कहना जितना सरल है उतना मूर्तिकला और चित्रकला पर नहीं। यही कारण है कि **रस्किन** ने कलाकृतियों पर दृष्टा और स्रष्टा दोनों ही दृष्टिकोणों से विचार किया है। **रस्किन** अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **Modern Painters** में कहता है कि जो स्रष्टा है वह द्रष्टा होता ही है बल्कि यदि यह कहा जाय कि विशिष्ट द्रष्टा ही स्रष्टा होता है किन्तु साथ ही साथ **रस्किन** यह भी कहता है कि प्रकृत-वस्तु के रहस्यों और गम्भीरता को परखने के लिए दृष्टि ही नहीं होनी चाहिए वरन् उनकी व्यवस्थित रूप से शिक्षा होनी चाहिए तथा उन्हें नियमित रूप से देखने की सामर्थ्य प्राप्त करने की भी दीक्षा लेनी चाहिए। स्वयं **रस्किन** ने कहा है, 'हमारी जागृत अवस्था में नेत्रों का अवलोकन व्यापार तो निरन्तर चलता रहता ही है, जहाँ तक हमारे शरीर धर्म का सम्बन्ध है, हम सदा कुछ न कुछ देखते तो हैं ही और यह मात्र देखना सदा एक ही तरह का होता है।''[1]

अर्थात् देखने की क्रिया सदैव होती ही रहती है क्योंकि यह शरीर का कर्तव्य है किन्तु यह देखना नहीं के बराबर है क्योंकि इस तरह की दृष्टि में गहराई या कोई विशिष्टता नहीं होती और यह हमारी अन्तर की चेतना पर केवल एक मृदुल आघात होता है। कठिन तपस्या और साधना के बाद ही हमारे नेत्र आध्यात्मिक ज्योति को धारण और अभिव्यक्त करने योग्य बन सकते हैं और जब हमारे नेत्र इतने शिक्षित हो जायेंगे कि वह गहराई तक झांक सकें उस समय स्रष्टा की लेखनी अथवा कूची से जिस कलाकृति का निर्माण होगा वह हमारे मन पर केवल मृदुल आघात ही नहीं करके रह जायेगी वरन् हमारी अन्तश्चेतना को भी अपने दिव्य प्रकाश से आलोकित कर देगी। इस दिव्य दृष्टि का दिव्य प्रकाश ही जीवन के महत्त्वपूर्ण गौरवमय और महिमामय रहस्यों का मूलस्रोत है।

रस्किन अपने राष्ट्र की चिन्तनधारा को परिवर्तित करना चाहता था। वह चाहता था कि उसके राष्ट्र के व्यक्ति विभिन्न कलाओं के अध्ययन-अध्यापन में रुचि लें। उसने अपनी इस महत्त्वाकांक्षा को इस प्रकार प्रस्तुत किया था कि अन्य माँगे उसके समक्ष गौण हो गयीं।

रस्किन मानव चेतना और मानव-आत्मा की अखण्डता और एकता में विश्वास करता है। उसकी सम्पूर्ण विचारधारा इसी सत्य पर आधारित है। **रस्किन** का मत है कि मनुष्य के समस्त क्रिया-कलाप किसी विशिष्ट शक्ति-केंद्र से जन्म नहीं लेते वरन् वह मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अपने साथ लेकर आगे बढ़ते हैं। मनुष्य की प्रत्येक क्रिया उसके विशिष्ट और भिन्न व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मात्र है। **डॉ० उपाध्याय** का कथन है कि यदि भारतीय साहित्य शास्त्रियों की विचारधारा का अवलोकन किया जाय तो उसमें भी रस्किन की विचारधारा का समर्थन मिलता है। भारतीय साहित्यशास्त्रियों के अनुसार जब आन्तरिक प्रयत्न और अनुशीलन दोनों का संयोग होता है तो काव्य की शक्ति उत्पन्न होती है।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 170

कला की परिभाषा देते हुए **रस्किन** कहता है कि सर्वश्रेष्ठ कला वह होती है जो पाठक के मन में किसी भी माध्यम से अधिक से अधिक उदात्त भावों को उदीप्त कर प्रेषणीय बना सके। सर्वश्रेष्ठ कलाकार की पहचान ही यही है कि वह अपनी कलाकृति में अधिक-से-अधिक विचारों और भावों को उदीप्त कर प्रेषणीय, अभिव्यंजक, भाषा को भावों की वाहिका के रूप में बना सके। कला भावों की व्यंजक भाषा है वह भावों की वाहिका है। भावों की वाहिका उसे होना ही है। यथार्थ, कल्पना और प्रकाशन के ढंग इन तीनों की सम्मिश्रण से कला या काव्य के रूप का निर्माण हुआ है। काव्य के बाह्य रूप रंग-सौष्ठव के मोहपाश में बँधकर मुग्ध हो हम थोड़ी देर के लिए उसकी प्रशंसा तो अवश्य कर सकते हैं किन्तु कला के वास्तविक रूप की परख तो उसमें व्याप्त भावों पर ही है। यदि उच्च और दिव्य भावों की अभिव्यक्ति के लिए विशिष्ट आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया जाये तो सोने में सुगन्ध का कार्य करता है। किन्तु स्वर्ण के मूल्यांकन में हम उसका कोई महत्त्व नहीं रखते। सोने में यदि सुगन्ध न भी हो तो कोई बात नहीं। **रस्किन** स्पष्ट शब्दों में कहता है कि, "चित्रकार अथवा साहित्य-स्रष्टा की उच्चता की कसौटी कला अथवा उक्ति का ढंग नहीं परन्तु अभिलेख्य अथवा अभिधेय भाव होता है।"[1]

रस्किन के अनुसार कला की श्रेष्ठता उसके भाव की मात्रा और उनकी भव्यता पर निर्भर करती है। **रस्किन** ने कला में प्रतिबिम्बित भावों पर सूक्ष्मता से विचार कर शक्ति, अनुकृति, सत्य, सौन्दर्य और सम्बन्ध इन भावों के नाम सुझाये हैं। यही भाव हमारे हृदय को उद्भासित कर वहाँ आनन्द का सृजन करते रहते हैं।

किसी भी उच्चकोटि की कला कृति को देखकर हम उसमें कलाकार की शक्ति और प्रतिभा का दर्शन करते हैं। प्रत्येक कलाकार अपनी सम्पूर्ण जीवनी शक्ति के साथ अपनी कलाकृति का निर्माण करता है। फिर भी प्रत्येक कलाकृति में एक शक्ति सर्वोपरि होती है। चाहे वह शक्ति हृदय की शक्ति हो अथवा मस्तिष्क की अथवा अँगुलियों की पर होती शक्ति ही है- एक ऐसी शक्ति जो अपने तेज से सारी कठिनाइयों को समाप्त कर कलाकार की कृति को उद्देश्य की अनुकूलता की ओर मोड़ देती है। जब कलाकार अपने कौशल के साथ कल्पना शक्ति और अपने व्यक्तित्व की पूर्ण शक्ति का प्रदर्शन कर सके तो उसकी कृति का महत्व ही चार गुना हो जाता है।

कलाकार की कुशलता उसकी शक्ति का बोध कराती है। कलाकार के कौशल को देखकर हम आनन्दित होते हैं। कलाकार के कौशल में जिन गुणों की आशा की जाती है वह है सत्य, सारल्य, रहस्यमयता, अपर्याप्तता, निर्णयात्मकता तथा गतिमयता।

सत्य का समावेश कला के लिए आवश्यक माना गया है। इसकी उपलब्धि परिश्रम द्वारा नहीं होती यह कलाकार की अपनी मौलिक वस्तु होती है। इसके समावेश से कला में सजीवता आती है।

दूसरे गुण की श्रेणी में सारल्य आता है। कला अभिव्यक्ति के साधन में जितनी सरलता, दिखावारहित, आडम्बरहीनता, शान्ति और वैराग्य होगा कला में उतनी ही प्रभावोत्पादकता होगी।

तीसरा गुण है रहस्यमयता। प्रकृति भी स्वयं अपने साधनों का प्रयोग गुप्त रूप से तथा रहस्यमय ढंग से करती है। अतः काव्य में रहस्यमयता उसकी प्रभावोत्पादकता को और भी बढ़ा देती है।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 181

रस्किन के अनुसार दुर्बोध और अचिन्तनीय कौशल श्रेष्ठ है।

साधन की अपर्याप्तता कौशल का एक गुण है। साधन की अपर्याप्तता ऐन्द्रिय शक्ति बोध का स्पन्दन पैदा करती है।

पाँचवाँ गुण निर्णयात्मकता है। किसी भी कलाकृति से निर्भीकता व आत्मविश्वास की झलक मिलनी चाहिए। पाठक को यह विश्वास होना चाहिए कि कलाकार को कहीं संशय अथवा शंका नहीं है।

छठा गुण है गतिमयता। एक गतिशील कलाकृति जितनी खूबी से सत्य की अभिव्यक्ति करती है उतनी मन्द कलाकृति नहीं। अतः गतिमयता कला का भिन्न गुण है।

अनुकृति भाव के सम्बन्ध में **रस्किन** के विचार बड़े ही स्पष्ट हैं। यदि हम किसी कलाकृति को देखकर उसमें वस्तु का आभास पाने लगते हैं जो वह है ही नहीं तब हम कह सकते हैं कि हमने अनुकृति का भाव प्राप्त किया। अनुकृति व सत्यता में पर्याप्त अन्तर है। सत्यता का क्षेत्र व्यापक है। सत्यता भावों और विचारों की होती है जबकि अनुकृति मूर्त और स्थूल पदार्थों की होती है। सत्यता में माध्यम को प्रतीक रूप में प्रयोग किया जाता है जबकि अनुकृति में यह सादृश्य होता है। सत्य तो सत्य है उसका खण्डन आशातीत नहीं अपितु अनुकृति का आभास तत्पश्चात् खण्डन होता है। अनुकृति और सत्यता के भाव ग्रहण करने के अवसर भिन्न होते हैं। सत्य का भाव ग्रहण करने का आधार सत्यता है जबकि अनुकृति का असत्यता।

कला में प्रतिबिम्बित एक अन्य भाव है सौन्दर्य। वही वस्तु सुन्दर कही-जा सकती है जिसके बाह्य धर्मों में मानव हृदय में साक्षात् आनन्द सृजित करने की शक्ति हो। इस आनन्द-सृजन में बुद्धि का कोई योग नहीं होता। यह मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति है। विधाता ने एक ओर तो कुछ वस्तुएँ सुन्दर बनायी ही हैं तो दूसरी ओर मनुष्य में सुन्दरता को परखने के गुण भी दिये हैं। सौन्दर्य वस्तुओं का सकारात्मक सत्य है, एक ऐसा सत्य जो आनन्द उत्पन्न करता हो। सौन्दर्य के दर्शन से मानस में स्फूर्ति का संचार होता है, जीवन की आद्यता भरती-सी मालूम देने लगती है तथा मानस स्वयं को दिव्यता से मण्डित-सा पाने लगता है। कोई भी मानस जब सौन्दर्य के भावों को ग्रहण करता है तो वह सम्बन्ध के भावों को तो स्वयमेव ही ग्रहण कर जाता है।

सम्बन्ध शब्द का व्यवहार **रस्किन** ने उन विशाल श्रेणी के भावों के लिए किया है जो कलाकृति के द्वारा प्रकट होते हैं। जब किसी कलाकृति को देखकर हम आनन्दित होते हैं किन्तु यह नहीं बता सकते कि उनमें क्या अच्छा लगा तब सौन्दर्य के भाव द्विगुणित हो जाते हैं तो यह कहा जाता है कि इन द्विगुणित सौन्दर्य के भावों से सम्बन्ध के भाव गृहीत हुए। अतः यदि किसी कला वस्तु को देखकर बौद्धिकता के भाव प्रकट होते हैं तो इन भावों को हम सम्बन्ध के भाव कह सकते हैं। यह किसी कलाकृति में अभिव्यंजना की वृद्धि कर उसे विशिष्टता प्रदान करती है, किसी गम्भीर सत्य से उसे मण्डित कर बुद्धि को उसका दर्शन कराती है तभी वहाँ सम्बन्ध के भावों की अभिव्यक्ति हो सकती है। रस्किन इसे कला द्वारा अभिद्योत्य भावों में सबसे महत्त्वपूर्ण मानता है। यहाँ तक कि सुन्दरता भी इसके सामने तुच्छ हो जाती है। स्वयं **रस्किन** के शब्दों में,

"Idea of relation involves and requires, at the instant of their perception, active exertion of intellectual power."[1]

कविता क्या है? कविता के स्वरूप का विवेचन करते हुए **रस्किन** कहता है कि कविता में उदात्त भाव जब उदात्त परिस्थिति से मिलते हैं तो कल्पना जागृत होती है और इन तीनों के परस्पर मिलने के कारण ही कोई रचना काव्य पद की अधिकारिणी होती है। केवल उदात्त भाव और उदात्त क्षेत्र या परिस्थिति के मिल जाने से ही कविता नहीं उत्पन्न होगी वरन् इन दोनों तत्वों के साथ आवश्यक तत्त्व 'कल्पना' का होना परमावश्यक है। विधायक कल्पना भावक की भावयित्री कल्पना को जगाकर उसे काव्य का रसास्वादन कराती है। कवि और भावक की कल्पना के सहयोग ही काव्य का आवश्यक तत्त्व है। उदात्त भाव अनुकूल परिस्थिति पाते ही काव्यात्मक भावों का रूप धारण करते हैं, कल्पना के सम्मिश्रण से रचना काव्य का रूप धारण करती है। **रस्किन** ने प्रेम, श्रद्धा, प्रशंसा, आनन्द, घृणा, भय तथा विषाद की गणना उदात्त भावों के अन्तर्गत की है। एक उच्च कला की महत्ता इस बात पर निर्भर नहीं करती कि उसकी शैली, चित्रांकन अथवा लेखन-विधि और विषय क्या है अपितु उसकी महत्ता इस बात में है कि उदात्त भावों की योजना में स्रष्टा कहाँ तक सफल हुआ है? इसी क्रम में **रस्किन** कलाकार का महत्त्व भी निर्धारित करता है। इसके लिए वह कुछ नियम निर्धारित करता है।

सर्वप्रथम, उदात्त विषय के निर्वाचन में कलाकार को विशेष ध्यान देना होता है। एक उच्च कलाकार की कसौटी यह है कि वह उन विषयों को अपनी कला का उपजीव्य बनायेगा जिनमें उदार विश्व मैत्री के भावों को धारण करने की शक्ति हो, जो उच्च मनोवेगों को हमारी तुच्छ भावनाओं और स्वार्थों के विपरीत धारण करे किन्तु इस निर्वाचन में हार्दिक सच्चाई और विवेक से काम लिया जाना चाहिए।

द्वितीय, कलाकार में सत्य पर आधारित अधिकाधिक सौन्दर्य संयोजन की निपुणता हो, शक्ति हो। यहाँ **रस्किन** कहता है कि ऐसा नहीं है कि कुरूपता का यहाँ कोई स्थान नहीं वरन् कुरूपता को वह सौन्दर्य के साथ ही ग्रहण करने की बात भी कहता है। सौन्दर्य के लिए सत्य का बलिदान करने का वह विरोधी है। महान् कलाकृति की सत्य पर पकड़ ज्यों कि त्यों बनी रहती है भले ही उसे सत्य के लिए सौन्दर्य का बलिदान करना पड़े। उच्च कृति दर्शक का ध्यान सुन्दर भावमय स्थलों की ओर आकृष्ट करती है।

तीसरा नियम है कि कला में कहीं भी अस्पष्टता, अनस्थिरता और मलिनता की लेशमात्र भी झलक नहीं होनी चाहिए क्योंकि यह कला के दरिद्र रूप को झलकाते हैं इसके विपरीत शक्ति, स्पष्टता, ज्योतिर्मयता और दृढ़ता श्रेष्ठ व उच्च कला के द्योतक हैं। अनेक सत्यों को समन्वित करते हुए एक वृहद् सत्य की घोषणा एक उच्च व महान् कृति का लक्षण है।

कलाकार के महत्व निर्धारण की चौथी कसौटी है 'कल्पना'। साधारण-सी घटनाओं को अपार प्रभावोत्पादक बनाना कल्पना के ही वश की बात है। कल्पना में मानव हृदय को प्रभावित करने की शक्ति होती है। कल्पना ही इतिहास जैसे शुष्क विषय के विवरण में चमक भरकर उसे ज्योतिर्मय बना देती है।

---

1. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य शास्त्र*, पृ० 195

इन सब नियमों के बाद भी **रस्किन** का विचार है कि श्रेष्ठ कला का निर्माण कलाकार अपनी सम्पूर्ण जीवनी शक्ति और व्यक्तित्व के यो। से करता है केवल कुछ शक्तियों के योग से नहीं। जिस कला का निर्माण मनुष्य की सम्पूर्ण शक्ति के साथ होता है वह ही श्रेष्ठ कला की श्रेणी में रखी जा सकती है। केवल कुछ शक्तियों के सहारे कला निर्माण व्यर्थ का समय गँवाना है।

उपसंहार

'स्वच्छन्दतावाद' अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म का हिन्दी अनुवाद है। 'स्वच्छन्दतावाद' को समीक्षकों ने विभिन्न आयाम दिये और उसके विकास को सुनिश्चित किया। **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों को केंद्र में रखकर अपने गहन चिंतन से सींचा था। **डॉ० उपाध्याय** हिन्दी के एकमात्र समीक्षक हैं जिन्होंने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के अन्तर्गत पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्यों के अनुशीलन विश्लेषण के द्वारा अपनी समीक्षा को विकसित किया। स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को व्याख्यायित करते हुए उन्होंने मनोवैज्ञानिकता को ही अपनी समीक्षा में सर्वोपरि स्थान दिया और स्वच्छन्दतावादी मनोवैज्ञानिक वैचारिकता को ही अपने चिन्तन का विषय बनाया।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों को तो अपने स्वच्छन्दतावादी विश्लेषण में स्थान दिया ही है इसके साथ-साथ आप **श्रीमती महादेवी वर्मा** की आलोचना पद्धति, **रामकुमार वर्मा** और **महादेवी** की गीतियों, यहाँ तक कि **पन्त** के **उच्छवास** और **प्रसाद** के **आँसू** की भी इस संदर्भ में चर्चा करते हैं।

डॉ० उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि स्वच्छन्दतावादी चिन्तन पर आधारित एकमात्र ग्रन्थ और हिन्दी स्वच्छन्दतावाद पर प्रथम व्यवस्थित ग्रन्थ **'रोमांटिक साहित्य शास्त्र'** में ही स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है।

डॉ० उपाध्याय अपनी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा दृष्टि को विस्थापित करने के क्रम में सर्वप्रथम क्लासिक और रोमांटिक अवधारणाओं का परस्पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण-अनुशीलन करते हैं।

क्लासिकल अवधारणा को परम्परावादी चिन्तन का नाम देते हुए **डॉ० उपाध्याय** ने क्लासिकल चिन्तन को भी मनोवैज्ञानिक चिन्तन की कसौटी पर कसा है, परखा है। क्लासिकल अवधारणा का प्रादुर्भाव तत्कालीन साहित्य में अतिशय कृत्रिमता के फलस्वरूप हुआ था किन्तु नव क्लासिकवाद उन लोगों के हाथ में पड़ गया जिनमें मौलिकता और प्रतिभा के प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं था, जीवन की ताजगी व सौन्दर्य के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। अतः स्वाभाविक अभिव्यक्ति को तो जैसे जंग लग गया था। कृत्रिमता ने अपनी जड़ें फैलानी प्रारम्भ कर दी थी।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने परम्परावादी अवधारणा के दोषों को ही केवल विश्लेषित नहीं किया वरन् वह क्लासिकल काव्य की उच्चता, गरिमा और उसका अनुशासन के प्रति कड़ा रूख भी विश्लेषित करते हैं किन्तु परम्परावादी अवधारणा को विश्लेषित करते हुए उसके बाह्य रूप सौन्दर्य प्रावधान और कृत्रिमता का विरोध करते हैं। परम्परावादी अवधारणा की कृत्रिमता ही उसके पतन का कारण बनी जिसके कारण परिवर्तन की आवश्यकता को बल मिला और तब आया 'रोमांटिक चिन्तन'।

रोमांटिक चिन्तन क्लासिक चिन्तन के प्रति विद्रोह के फलस्वरूप आया था। रोमांटिक साहित्य प्रवृत्ति से चंचल साहित्य है उसमें आँधी और तूफानों का बोलबाला है। इस चिन्तन में प्रवाह है वेग है अतः स्वच्छन्दता है। इसी कारण यह चिन्तन किसी नियम या कानून में नहीं बँध सकता और स्वच्छन्द विचरण करता हुआ अनुशासन की अवहेलना करता है। क्रांति, विद्रोह इस चिन्तन का मूल

स्वर है। व्यक्ति की स्वतंत्र अनुभूति की कल्पना और आवेग के माध्यम से ही अभिव्यक्ति होती है और जब वह भाषा के माध्यम से प्रकट होती है तो अनुशासन, नियम, नीति, सदाचार किसी से भी उसका सामंजस्य नहीं हो पाता। मन का यह आवेग कवि को कहीं रुकने का अवसर ही नहीं देता वह तो बस हर बंधन को तोड़ता प्रवाहित ही होता रहता है।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने रोमांटिक चिन्तन को विश्लेषित करते हुए रोमांटिक कवि पर अपना ध्यान केंद्रित किया हैं। उनका अभिमत है कि रोमांटिक कवि का मस्तिष्क अत्यधिक संवेदनशील और प्रतिक्रियाशील होता है। जब वह वास्तविकता के सम्पर्क में आता है तो सत्य उसके मानस पटल पर इस प्रकार अंकित हो उठता है कि मानो उसकी दिव्य दृष्टि के नेत्र खुल गये हों और वह सत्य से हूबहू साक्षात्कार करता है। प्रकृत वस्तु के प्रति क्रियाशीलता का भाव इतना तत्वपरक होता है कि प्रकृत वस्तु की वेदना उसके हृदय को भेदती है। यह अनुभूति स्वतःप्रसूत वेदना के रूप में उसके हृदय के अन्तर्मन पर प्रवाहित होती है तथा एक अदम्य प्रवाह व वेग की भाषा के रूप में अभिव्यक्त हो जाती है। यह कविता रहस्यवाद से पूर्ण, प्राणों की आकुलता लिये और पर्वतों को गिरा देने की शक्ति लिये होगी। रोमांटिक कविता में कवि के आत्मदर्शन की अथवा आत्माभिव्यक्ति की ही झलक नहीं मिलती वरन् उस युग के समवेत कण्ठस्वर की ध्वनि भी सम्मिलित रहती है।

डॉ० उपाध्याय का मत है कि रोमांटिक कविता स्वतःप्रसूत है। वह कवि की इच्छा अनिच्छा और परिश्रम पर निर्भर नहीं है न ही उसे तराशने और छाँटने की आवश्यकता है। वह तो कवि के अन्तस् से स्वतः ही उमड़ती है और कवि को अपने को अभिव्यक्त करने के लिए विवश कर देती है। कवि के हृदय में भाव उमड़-घुमड़कर हलचल पैदा कर देते हैं। प्रवाह अथवा आवेग का संचार होते ही कविता फूट पड़ती है- शब्दों की ढाल लेकर, यह कविता अपनी अभिव्यक्ति की भाषा स्वयं ही ले आती है। अनुशासन को ताक में रख, परम्परा को तोड़, एक विशिष्ट ढंग से यह कविता अभिव्यक्त होती है। इस साहित्य की अभिव्यक्ति में प्रवाह है, गति है, गहराई है, स्वच्छन्दता है, विद्रोह है और सबसे ऊपर है अनुशासन की अवहेलना। इस साहित्य में विद्रोहात्मक प्रवृत्ति, आवेग, आवेश और स्वच्छन्दता इत्यादि पाई जाती है।

डॉ० उपाध्याय ने रोमांटिक कविता की उत्पत्ति के लिए एक प्रेरक शक्ति का विद्यमान होना स्वीकार किया है। यह शक्ति कवि के अन्तस् में विद्यमान रहती है। जब कवि एकान्त क्षणों में बैठा हो अथवा शान्ति के क्षणों में बैठा हो और किसी शक्तिशाली अथवा प्रबल स्मृतियों का पुनः स्मरण करता है तो वह घटना जो उसके अचेतन मन पर कहीं सुसुप्तावस्था में विद्यमान थी, स्मरण की क्रिया से कवि के स्मृति पटल पर पुनः अंकित हो जाती है। यह स्मरण कवि के हृदय की वेदना अश्रुधारा के माध्यम से कविता रूप में परिणत हो जाती है। यही वेदना कवि की स्वतःप्रसूत वेदना है और रोमांटिक कविता की प्रेरक शक्ति अर्थात् जननी है।

ऐसी स्वतःप्रसूत कविता को **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने कल्पना, स्वप्रकाश, सहज प्रतिभा आदि नाम दिया है। वह इसे 'शक्ति' नाम से भी सम्बोधित करते हैं। एक ऐसी शक्ति जो कवि हृदय में भावों का संचार करती है, वेदना उत्पन्न करती है और प्रेरित करती है भावों को उमड़ने-घुमड़ने को। यही वेदना कवि हृदय पर इस प्रकार चोट करती है कि कवि के अन्तर्मन से आह निकलती है और यही आह गान के रूप में अभिव्यक्ति को प्राप्त होती है। यह स्वतःप्रसूत वेदना जिसे वैयक्तिक अनुभूति

भी कहते हैं, कवि हृदय पर अपना प्रभाव फैलाती हुई कवि को एक ऐसे दिव्य लोक का दर्शन कराती है जहाँ केवल सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य है और तब कवि की यह अनुभूति कोयल की कूक के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वेदना की सृष्टि करती है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्वच्छन्दतावाद को निविड़ आवेग का नाम दिया है। स्वतःप्रसूत प्रेरणा अथवा कल्पना तथा आवेग दोनों एक दूसरे के पूरक हैं इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जाता सकता। हाँ, यह अवश्य है कि कभी कल्पना का पलड़ा भारी होता है तो कभी आवेग का, किन्तु एक की अनुपस्थिति में दूसरा अपंग है, अपूर्ण है। यही दोनों रोमांटिक काव्य के जन्मदाता भी हैं।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने रोमांटिक कविता को वैयक्तिक अनुभूति से प्रसूत माना है। इस सम्बन्ध में उनका विचार है कि जब तक किसी भी भाव, घटना अथवा दृश्य के प्रति कवि की व्यक्तिगत अनुभूति नहीं होगी तो वह कविता का सृजन नहीं कर सकेगा क्योंकि यही वैयक्तिक अनुभूति कवि के हृदय में वेदना का संचार करती है और जब तक स्वयं कवि के हृदय में वेदना की अनुभूति नहीं होगी तो फिर प्रवाह, निविड़ आवेग और भावों की गड़गड़ाहट भी किस प्रकार जन्म लेगी? कहाँ फिर हमें उस काव्य का दर्शन हो सकेगा कि जिसकी अभिव्यक्ति के लिए कवि को बाध्य होना पड़ता है। अतः वैयक्तिक स्वातंत्र्य अनुभूति भी रोमांटिक काव्य का एक आवश्यक तत्त्व है और आवेग के माध्यम से प्रकट होती है।

रोमांटिक कवि भी सामाजिक प्राणी है। अतः उस पर भी सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। कवि मन कोमल एवं भावुक होता है। अतः अपने कोमल हृदय के कारण वह सामाजिक आवश्यकताओं व अपने नैतिक एवं मौलिक कर्तव्यों को समझते हुए वह भावुक मन से हृदय की अनुभूतियों को बड़ी ही सुन्दरता से अपनी लेखनी में डुबो देता है। उसके सृजन कार्य में वैयक्तिक अनुभूति के साथ-साथ उस युग की आत्मा भी बोलती है। कवि ही युग की आत्मा की धड़कन एवं स्पन्दन की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुन सकता है। अतः वह अपनी कविता के माध्यम से तत्कालीन विचारधारा का सामूहिक रूप से प्रतिनिधित्व करता है। मेरे विचार से इसे यदि सृजनात्मक प्रेरक शक्ति का नाम दिया जाए तो कुछ गलत नहीं है। अतीत की घटना पर आधारित काव्य में उस तेज और ज्योति का कोई स्थान नहीं होता जो युगात्मक ध्वनि से दीप्त कवि की वाणी का शृंगार होती है।

वस्तुतः आन्तरिक सौन्दर्य और आन्तरिक चेतना रोमांटिक काव्य का प्राण है। इसके अभाव में कोई भी कविता रोमांटिक कविता के पद की अधिकारिणी नहीं हो सकती। इन्द्रियातीत काल्पनिक सौन्दर्य ही रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषता है। यही विशेषता रोमांटिक काव्य और क्लासिकल काव्य में विभेदीकरण भी करती है। रोमांटिक काव्य आँखें मूँद कर आन्तरिक सांसारिक सौन्दर्य का साक्षात्कार कराता है। काव्य का प्रमुख उद्देश्य ही पाठक के हृदय को आनन्दोद्रेक करना है किन्तु जब हृदय के भावों को सौन्दर्य के माध्यम से आनन्दोद्रेक किया जाय तो वहाँ परमानन्द के साथ-साथ आत्मसंतुष्टि भी प्राप्त होती है। रोमांटिक काव्य में सौन्दर्य अपने बहुत्व स्वरूप का प्रत्यक्षीकरण करते हुए भी एकत्व में लीन रहता है।

आन्तरिक सौन्दर्य के साथ-साथ आन्तरिक चेतना भी जिसे वैयक्तिकता कहते हैं रोमांटिक काव्य का प्राण तत्त्व है। जिस कविता में आन्तरिक चेतना एवं आत्मजागृति के भाव न हों वह कविता ही निर्जीव होती है। आत्मगौरव की प्रवृत्ति ही इसे आन्तरिक चेतना की ओर उन्मुख करती है। जिस काव्य के रसास्वादन से श्वास को गति न मिले, जिस काव्य के रसास्वादन से प्राण स्पन्दित न हों तथा जिस काव्य के रसास्वादन से आत्मा आनन्दित न हो वह कविता रोमांटिक नहीं हो सकती। रोमांटिक काव्य ही वह काव्य है जिससे श्वास को गति मिलती है, मन की धड़कनें धक-धक की आवाज करती हैं और कभी-कभी तो यहाँ तक होता है कि साँस रोककर पाठक जिज्ञासा के साथ काव्य का रसास्वादन करता है तो शान्त वातावरण में दिल की धड़कनों की आवाज़ इस प्रकार शान्ति भंग करती हैं मानो शान्त एवं स्थिर सागर में किसी ने एक नन्हां-सा कंकड़ फेंक उसमें हलचल पैदा कर दी हो। अतएव जिस काव्य में भावों की गहराई और उच्चता होती है वह काव्य ही आत्मा को स्पन्दित कर सकता है।

रोमांटिक कविता का अर्थ है कृत्रिमता से परे सरलता, सहजता एवं स्वाभाविकता। स्वाभाविक और स्वतःप्रसूत विचार उसी भाषा में अभिव्यक्त होते हैं जो कि मनुष्य के लिए स्वाभाविक होती है। सरल एवं सीधे शब्द ही पाठकों के हृदय में गहराई तक उतर सकते हैं। यही भाषा भावों की गहराई और भव्यता को पाठकों के हृदय-खण्ड से संयुक्त कर देने के लिए समर्थ हो सकती है वहीं दूसरी ओर भाषा की तड़क-भड़क व कृत्रिमता पाठकों के ध्यान को इधर-उधर भटका देती है, जिससे वर्ण्य विषय का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, और फिर कविता का स्वरूप अधिक पानीवाले शर्बत के समान हो जाता है। अतः रोमांटिक काव्य के लिए साधारण, सुलभ तथा दैनिक प्रयोग की भाषा ही अपेक्षित है।

यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावाद का जन्म-जन्मान्तर का साथ है। स्वच्छन्दतावाद असत्य, कृत्रिमता एवं झूठ का परस्पर विरोधी साहित्य है। स्वाभाविकता और यथार्थता तो रोमांटिक काव्य का सार है। विशुद्ध अनुकरण रोमांटिक काव्य में त्याज्य है किन्तु काव्योचित अनुकरण तथा सत्यता रोमांटिक काव्य का प्राण है। प्रकृत-वस्तु से साक्षात्कार के समय सत्य कवि के मानस-पटल पर अंकित हो जाता है तो उस समय ही कवि का सत्य से साक्षात् साक्षात्कार होता है। जब कवि का सत्य से साक्षात्कार होता है तभी उसके दिव्य ज्योति के नेत्र खुलते हैं।

प्रत्येक रोमांटिक कवि दार्शनिक होता है। जीवन-दर्शन के गम्भीर दर्शनों को वह सदैव सुबोधतर रूप देने के प्रयत्न में रहता है। एक दार्शनिक होने के नाते रोमांटिक कवि सृजन व्यापार और तद्गत मानसिक अवस्था तथा हृदय की गहराई के उस बिन्दु तक पहुँचने की कोशिश करता है जहाँ से सृजन कार्य आरम्भ होता है।

रोमांटिक कवियों के काव्यों में आध्यात्मिकता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। रोमांटिक कवि प्रत्येक वस्तु को आध्यात्मिकता से मण्डित देखता है। उसके लिए ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड में कोई अन्तर नहीं। वह स्थूल में सूक्ष्म का दर्शन करता है तथा साथ ही विविध लीलाओं की डोर हिलाने वाले इस जगत् के सूत्रधार की खोज करता है।

आधुनिक कवि मनोवैज्ञानिक हो गया है। मनोवैज्ञानिक होने के कारण ही उसमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ अधिक दृष्टिगोचर होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक कवि मनोवैज्ञानिक होने

के साथ-साथ स्वच्छन्दतावादी अधिक हो गया है इसी कारण आज कवि आलोचक भी हो गया है। आधुनिक मनोविज्ञान ने मनोविश्लेषण के द्वारा आलोचना को नूतन मार्ग दिखलाया है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार किसी भी कला या साहित्यिक कृति की उत्पत्ति कलाकार अथवा कवि की दमित प्रवृत्ति के कारण होती है। दमित वृत्तियों का ज्ञान स्रष्टा को होता नहीं है क्योंकि इनमें से कुछ वर्णनीय तो कुछ गोपनीय होती हैं। Climate, Country, Environment के साथ दमित प्रवृत्तियाँ काव्य-सृजन का स्रोत हैं। यही कारण है कि महान् से महान् कवि की कविता का प्रेरणास्रोत 'कल्पना' है, जिसमें अधिकतर नारियों की प्रेयसी अथवा अर्धांगिनी के रूप में 'कल्पना' की गई है। यही 'कल्पना' तत्व रोमांटिक कविता का प्रेरणास्रोत है। अतः स्वच्छन्दतावादी कवि अत्यधिक मनोवैज्ञानिक होता है। वैसे भी मनुष्य के जीवन के प्रत्येक पहलू से मनोविज्ञान का सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार रोमांटिक कविता से भी मनोविज्ञान का प्रगाढ़ सम्बन्ध है। कवि की कोई भी रचना अकस्मात् घटना नहीं होती उसके पीछे नियामक कारण होते हैं। कवि प्रवृत्ति व्यक्ति का यदि किसी घटना अथवा प्रकृत वस्तु से साक्षात्कार होता है वह घटना अचल प्रकृत-वस्तु कवि को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित करती है किन्तु प्रतिकूल भावों और प्रवृत्तियों के कारण उस समय कवि मन में भाव जो सुसुप्त अवस्था में सदैव विद्यमान रहते हैं, नहीं जागते। फलतः मानसिक व्यापार कार्य नहीं हो पाता जिसके कारण कवि की सृजनात्मक प्रवृत्ति प्रेरित नहीं होती वहीं दूसरी ओर जब कवि शान्त क्षणों में अथवा फ़ुरसत के क्षणों में बैठा होता है तो 'कल्पना' क्रियाशील हो उठती है। वह घटना अथवा प्रकृत वस्तु कवि के अचेतन मस्तिष्क से निकलकर चेतन मस्तिष्क में प्रवेश कर अपने को कवि मस्तिष्क की स्मृति पटल पर अंकित कर देती है। कवि की स्मृति पटल पर घटनाक्रम अंकित होते हैं मानसिक व्यापार प्रारम्भ हो जाता है और अब बारी आती है सोये हुए भावों के जागने की। अनुकूल भावों के सम्पर्क में आते ही 'कल्पना' को बल मिलने लगता है और वह प्रवाह व आवेग का सहारा पाकर कवि मन पर घात-प्रतिघात करती है और वेदना का रूप धारण करती है। वेदना आह बनकर अश्रु मार्ग से कवि की रचना के रूप में अभिव्यक्ति को प्राप्त होती है। यह सब कार्य इतने सहज और स्वाभाविक ढंग से होते हैं कि कवि को इसका तनिक भी आभास नहीं होता और वह वैयक्तिक अनुभूति को अपनी लेखनी के माध्यम से स्वतः ही बिना किसी परिश्रम के अभिव्यक्त करता चला जाता है।

इस प्रकार प्रत्येक रोमांटिक कवि पहले मनोवैज्ञानिक होता है, फिर कवि अथवा कलाकार।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने मनोविश्लेषण के द्वारा स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक नवीन पृष्ठभूमि दी है। आगे की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के लिए नवीन मार्ग दिखाकर स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को अद्यतन रूप दिया है। उनकी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा दृष्टि सर्वथा मनोवैज्ञानिक है। आपने स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों के मध्य व्यापक फलक पर विश्लेषित किया है। हिन्दी-समीक्षा संसार की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को विकासात्मक नवीन आयाम देने के कारण हिन्दी समीक्षा-संसार **डॉ० उपाध्याय** का सदैव ऋणी रहेगा तथा स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के लिए हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में ही नहीं, आपका नाम विश्व-साहित्य

में भी स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। इसका कारण यह है कि स्वच्छन्दतावादी अवधारणा अन्तर्राष्ट्रीय काव्य अवधारणा है और इस चिंतन के साथ समस्त विश्व का साहित्य कहीं-न-कहीं जुड़ा होता है क्योंकि स्वच्छन्दतावादी चेतना मानवीय अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति होती है। इसमें परम्परा एवं रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा भी होती है। वस्तुतः जीवन एवं जगत् की सहजता, मानवीयता, इहलौकिकता ही स्वच्छन्दतावादी काव्य की आत्मा है। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावादी चेतना वैश्विक-ब्रह्माण्ड चेतना की सहजावस्था का ही दूसरा नाम है।

परिशिष्ट

मेरे मित्र श्री देवराज उपाध्याय जी ने अंग्रेजी साहित्य के रोमांटिसिज्म नामक विशिष्ट साहित्यिक भावधारा के सम्बन्ध में यह पुस्तक लिखकर हिन्दी को एक ऐसी वस्तु दी है जिसकी आवश्यकता बहुत दिनों से अनुभव की जा रही थी। अंग्रेजी के इस विशेष साहित्यांग की जानकारी नाना दृष्टियों से आवश्यक है। एक तो वैसे ही हिन्दी जो इस अत्यन्त समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा वाले महान देश की केंद्रीय भाषा हैं- में संसार की उन समस्त शक्तिशाली भावधाराओं की गंभीर आलोचना होनी चाहिए जो संसार के जनसमूह को निविड़ भाव से प्रभावित कर रही है या कर चुकी है, फिर रोमांटिसिज्म तो **ऐसी भावधारा है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे साहित्य पर पड़ा है। इसलिए इस विषय पर कोई अच्छी** परिचयात्मक पुस्तक का न होना खटकने वाली बात थी। श्री देवराज जी के प्रयत्न से अब इस विषय पर यह सुन्दर पुस्तक प्रस्तुत हो गई है। ज्यों-ज्यों हमारा चित्त उन्मुक्त होता जायेगा, त्यों-त्यों संसार की अन्य समृद्ध भावधाराओं का अध्ययन भी हमारी भाषा में उपस्थित किया जायेगा।

रोमांटिसिज्म क्या है?

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी कवियों में एक अद्भुत उन्मुक्त भावधारा प्रबल होकर प्रकट हुई। इसमें परिपाटी विहित और परम्परामुक्त-रस-दृष्टि के स्थान पर कवि की आत्मानुभूति आवेग धारा और कल्पना का प्राधान्य था। इस विशिष्ट दृष्टिभंगी की प्रधानता को ध्यान में रखकर कुछ विद्वानों ने हिन्दी में इसे 'स्वच्छन्दतावाद' कहा है। परन्तु यह शब्द उस सम्पूर्ण साहित्य की आत्मा को प्रकट करने में समर्थ नहीं है। रोमांटिक साहित्य वस्तुतः जीवन के उस आवेगमय पहलू पर जोर देने के कारण अपना वह रूप धारण कर सका है जो कल्पना प्रवण अन्तर्दृष्टि द्वारा चालित किंवा प्रेरित होता है और स्वयं भी इस प्रकार की अन्तर्दृष्टि को चालित और प्रेरित करता रहता है। क्लासिकल या परम्परा-समर्थित साहित्य में परिपाटी विहित रसज्ञता या रस-निष्पत्ति पर जोर दिया गया होता है इसलिए उनमें उस अनासक्त सौन्दर्य-ग्रहिणी दृष्टि का प्राधान्य रहता है जो अधिकाधिक मात्रा में सामान्य होती है, विशेष नहीं। जब कोई सहृदय सौन्दर्य और रस बोध के सामान्य मांग को स्वीकार कर लेता है तो उसका ध्यान सामान्य भाव से निर्धारित सौन्दर्य के टाइप और नीति तथा सदाचार के परिपाटी-विहित नियमों को ही अंगीकार करता है। व्यक्ति की स्वतंत्र अनुभूति तो कल्पना और आवेग के माध्यम से ही प्रकट होती है और जब वह प्रकट होती है तो नीति और सदाचार के परिपाटी विहित मानों से सब समय उसका सामन्जस्य ही नहीं होता। कई बार उसे ऊपर सतह के सदाचार के विरुद्ध विद्रोह करना पड़ता है। परन्तु यह विद्रोह उसका मूल स्वर नहीं है। हिन्दी साहित्य के छायावादी उत्थान के समय भी कई प्रकार की उन्मुक्त आवेग प्रधान और कल्पना प्रवण अन्तर्दृष्टि दिखी थी। कई कवियों में उसका विद्रोहामूलक रूप ही प्रधान हो उठा। परन्तु यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि विद्रोह केवल विशेष प्रकार की वैयक्तिक दृष्टिभंगी के साथ परिपाटी-विहित रसास्वादन का सामंजस्य न हो सकने का बाह्यरूप मात्र है। यदि यही अन्त तक कवि का मुख्य वक्तव्य बनी रह जाय तो कवि सफल नहीं होता। परन्तु जो कवि उसका वास्तविक मूल्य समझता है वह स्थायी और अमर साहित्य का निर्माण करता है। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ के अंग्रेजी के जिन साहित्यकारों में उन्मुक्त स्वार्थी दृष्टिभंगी विकसित हुई थी वे विद्रोही अवश्य थे परन्तु वह विद्रोह उनकी नवीन भावधारा का एक बाहरीन और आवश्यक रूप भरा था। केवल परम्परा प्राप्त साहित्य का विरोध करने के लिए या

परिपाटी-विहित रसज्ञता का प्रत्याख्यान करने के लिए यह साहित्य नहीं रचा गया था। इसीलिए उसे स्वच्छन्दतावाद कहना उसके एक पहलू को ही अधिक बढ़ाकर कहना है।

रोमांटिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिनमें कल्पना के अविरल प्रवाह से धन-संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग-वे दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी है परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि ये दोनों एक दूसरे से अलग रहकर काम करती हैं। वस्तुतः इनका पृथक्-पृथक् नाम देना और स्वरूप बताना केवल आलोचना की सुविधा के लिए परिकल्पित हैं, काव्य की अभिव्यक्ति में ये दोनों वृत्तियाँ वस्तुतः एक दूसरे से इस तरह गुंथी रहती हैं कि उनको अलग करना कठिन होता है, केवल सहृदय इतना अनुभव कर सकता है कि कहां एक की मात्रा अधिक है और दूसरी की कम, कहां से करीब-करीब समान हैं और कहां एक ने दूसरी को दबोच लिया है। परन्तु चित की उन्मुक्तता केवल दो मनोवृत्तियों की प्रधानता का समानान्तर नहीं है। यह केवल काव्य के क्षेत्र में ही अपने आपको प्रकाशित नहीं करती, जीवन के विविध क्षेत्रों में उसकी लीला विराजने लगती है। तत्वज्ञ पंडितों ने उस युग के इंग्लैण्ड के इतिहास से दिखाया है कि यह चित्रगत उन्मुक्तता सर्वत्र अपना प्रभाव विस्तार कर रही थी। विचार के क्षेत्र में उसने परिपाटी विहित नियमों को अस्वीकार किया। फ्रेंच क्रांति ने उन दिनों यहाँ के जन चित्त को तेजी से आन्दोलित किया था, वैज्ञानिक आविष्कारों यातायात के नये साधनों और इन सबके परिणाम रूप में आत्मप्रकाश करने वाली व्यावसायिक क्रांति ने मनुष्य में नई चेतना को जागृत किया। इस युग के यूरोप में एक अद्भुत विरोधाभास है। मनुष्य ने धर्म पर संदेह किया, ईश्वर पर सन्देह किया परम्परा समर्थिक नैतिक दृष्टिभंगी पर संदेह किया, परिपाटी-विहित रसज्ञता पर भी सन्देह किया और फिर भी यह युग विश्वास का युग है क्योंकि मनुष्य ने अपने ऊपर सन्देह नहीं किया। उसने मनुष्य की महिमा पर दृढ़ता के साथ आस्था जमाए रखी। मनुष्य सब कुछ कर सकता है, वह प्रकृति के अजेय दुर्ग पर अपनी विजय पताका फहरा सकता है- इस विचार ने मनुष्य के चित्त में अपूर्व आत्म विश्वास का संचार किया।

व्यावसायिक क्रांति के कारण राजनीतिक और आर्थिक शक्ति धीरे-धीरे सामन्तवर्ग के हाथ से निकल व्यवसायी वर्ग के हाथ में आ गई। जिन दिनों इंग्लैण्ड में सामन्तशाही के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन हुआ था, उन दिनों पूँजीवाद नया शिशु था, साधारण प्रज्ञा के स्वार्थों के साथ उसका विरोध नहीं था। साधारण जनता ने उन दिनों पूँजीवाद के नये पुरस्कर्ताओं का साथ दिया था। नये वैज्ञानिक साधनों के उपयोग से जो नई नागरिक सभ्यता उत्पन्न हुई उसने कुछ ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि अनायास ही परम्परा की कड़ियाँ टूटती गई। शहर की भीड़-भाड़ ने पुराने सदाचार के नियमों को शिथिल कर दिया, शिक्षा प्रचार राज्य का कर्तव्य मान लिया गया और वैज्ञानिक शोधों के साथ मिली हुई नई शिक्षा व्यवस्था ने एक ही साथ वंशगत प्रतिष्ठा और धार्मिक शासन के साथ विद्रोह किया। इस प्रकार परिस्थितियाँ वैयक्तिक स्वाधीनता के अनुकूल थीं, आडमस्मिथ ने सुझाया कि किसी राष्ट्र की सम्पत्ति उसके व्यक्तियों की योग्यता और स्वाधीनता पर ही निर्भर है। व्यावसायिक क्रांति की उथल-पुथल ने कुलीन पुरुष के इस दावे को निर्मूल सिद्ध किया कि कुल विशेष भगवान की धारा में स्नान करके पुरातन ने भी नया रूप ले लिया है। इस सद्यः स्नाता काव्य-लक्ष्मी का 'प्रत्यंग-मंजन-विशेष विविक्त-क्रांति' सचमुच दर्शनीय है। वर्डस्वर्थ, शेली, कीट्स आदि कवियों ने जिस मोहक सौन्दर्य जगत् का निर्माण किया है, वह अपूर्व है। उसने हमारे देश के साहित्य को भी प्रभावित किया है। उसकी

चर्चा बहुत वांछनीय है।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि प्रो० देवराज ने यह उत्तम कार्य कर दिया है। इसके लिए उन्हें कितना ही परिश्रम करना पड़ा होगा, यह सहृदय मात्र अनुभव कर सकते हैं। पुस्तक में कहीं उपाध्याय जी ने अंग्रेजी शब्द और वाक्यों का अनुवाद किये बिना ही छोड़ दिया है। मुझे लगता है कि इससे केवल हिन्दी जानने वाले लोगों को थोड़ी असुविधा होगी। परन्तु अधिकांश स्थलों में उन्होंने अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के प्रति शब्द बनाये हैं। इसका गढ़ना कितना दुष्कर कार्य है यह बात भुक्तभोगी ही जान सकते हैं। उन्होंने इस साहित्य के सब पहलुओं पर विस्तृत विचार किया है, मेरा विश्वास है कि हिन्दी के साहित्यालोचन के क्षेत्र में इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत होगा। इससे उन अंग्रेजी साहित्य के विद्यार्थियों को भी लाभ होगा जो अपनी मातृभाषा में उस साहित्य की विशेषताओं के समझने का साधन और सुयोग नहीं पाया करते। पंडित देवराज जी जो कुछ लिखते हैं वह सोच-समझकर और विचार कर लिखा करते हैं। हिन्दी के नये आलोचकों में वे विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि वे भविष्य में हिन्दी साहित्य को और भी नई विचारधाराओं की पुस्तकें देते रहेंगे और मातृभाषा के भण्डार को समृद्ध बनाते रहेंगे। तथास्तु।

काशी विश्वविद्यालय,

—हजारी प्रसाद

अक्षय तृतीया, सं० २००८

ग्रन्थानुक्रमणिका

सहायक ग्रन्थों की सूची

अमृत राय: नयी समीक्षा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1950

डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्र०सं०, 1975 ई०

-स्वच्छन्दतावाद : छायावाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी, प्र० सं०, 1975 ई०

-नवस्वच्छन्दतावाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्र० सं० 1987 ई०

डॉ० अम्बादत्त पाण्डेय : आधुनिकता और आलोचना, प्र० सं० 1985 ई०, प्रेम प्रकाशन, दिल्ली

डॉ० इन्द्रनाथ मदान : आधुनिक कविता का मूल्यांकन, हिन्दी भवन, जालन्धर और इलाहाबाद, प्र० सं० मार्च, 1962

आधुनिकता और हिन्दी आलोचना, राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6, प्र० सं० 197

डॉ० कुमार विमल : नयी कविता नयी आलोचना और कला, भारती भवन, पटना, प्र० सं० 1963

कला-विवेचन, भारती भवन, पटना, प्र० सं०, 1968

-काव्यानुशीलन : आधुनिक-अत्याधुनिक, ज्ञानपीठ प्रा० लि०, पटना-4

आधुनिक हिन्दी काव्य, अर्चना प्रकाशन, आरा, बिहार, प्र० सं०, 1964

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, सरस्वती-मंदिर, काशी, प्र० सं०, बसन्त पंचमी, 2004

डॉ० कृष्णवल्लभ जोशी : नव्य हिन्दी समीक्षा, ग्रन्थम्, रामबाग, कानपुर, प्र० सं०, 1966

डॉ० जगदीश गुप्त : स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, 1966, आगरा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1977

देवराहा दिव्य दर्शन : सीवान सत्संग समिति, प्र० सं०, 1984

डॉ० देवराज उपाध्याय : रोमांटिक साहित्याशास्त्र, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण, 1951

-विचार के प्रवाह, मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1958

-ग्रन्थावली भाग-2, अनुराग प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1982

-मनोवृत्तानुवर्ती आख्यान रचना, वासुदेव प्रकाशन, भोजपुर (बिहार), प्र० सं०, 1977।

-कथा साहित्य के मनोवैज्ञानिक समीक्षा सिद्धान्त, सौभाग्य प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० 1

डॉ० दीनानाथ सिंह : काव्य प्रवृत्तियाँ : भारतीय और पाश्चात्य, विजय प्रकाशन, सुडिया वाराणसी, प्र० सं०, 1989

– छायावादोत्तर प्रबन्ध शिल्प, विजय-प्रकाशन, सुडिया, वाराणसी, प्र० सं० 1989

डॉ० देवराज : आधुनिक समीक्षा, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6, प्र० सं०, 1954।

– छायावाद का पतन, वाणी मन्दिर प्रेस, छपरा, प्र० सं०, 1947

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2 नामवाची शब्दावली ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र० सं० सम्वत् 2020

डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 7, तृ० सं० अगस्त, 1966

– आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं०, 1968

– विचार और विश्लेषण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1961

– विचार और अनुभूति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, शरद पूर्णिमा, 1951

आ० नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण सं० 2013

– आधुनिक काव्य रचना और विचार, साथी प्रकाशन, सागर, चतुर्थ संस्करण, 1969

– नया साहित्य : नये प्रश्न, विद्यामंदिर, ब्रह्मनाला, बनारस, 1949

– हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 1970

– नयी कविता, मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लि० नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।

डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, चतुर्थ संस्करण, 1968

-इतिहास और आलोचना, साहित्य प्रकाशन-2डी, मिण्टोरोड, इलाहाबाद, फरवरी, 1962

– कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, प्रथम संस्करण, 1968।

–छायावाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- 6, द्वि० सं०

डॉ० नन्दकिशोर नवल : हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र०सं०, 1981

डॉ० परशुराम शुक्ल 'विरही' : आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद, ग्रन्थम राम बाग, कानपुर, 1967

डॉ० प्रेमशंकर : हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मालवीय नगर, भोपाल, प्र० सं०, 1974

– सृजन और समीक्षा, प्रकाशन संस्थान, 4715/21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र० सं० 1987

प्रकाशचन्द्र गुप्त : नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1953

डॉ० पी० आदेश्वर राव : स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन, बैतूल बिल्डिंग, आगरा, संस्करण, 1972

डॉ० फूलबिहारी शर्मा : हिन्दी की स्वच्छन्द समीक्षा, तारामण्डल, अलीगढ़, 1982

डॉ० बच्चन सिंह : आलोचक और आलोचना, प्रकाशन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नयी दिल्ली, 18 मार्च, 1988

डॉ० भागवतस्वरूप मिश्र : हिन्दी आलोचना उद्‌भव और विकास, साहित्य सदन, देहरादून, सं० तृतीय, 1972

डॉ० मिथलेश सिंह : स्वच्छन्दतावादी समीक्षा : नये आयाम, अतुल प्रकाशन, ब्रह्मनगर, कानपुर, प्र० सं० 1985

डॉ० मक्खन लाल शर्मा : आधुनिक हिन्दी आलोचना : एक अध्ययन, साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा, दिल्ली सं० 1968

डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल- आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं०, 1958

– जयशंकर वस्तु और कला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं० 1968।

– सं० हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966।

– समीक्षा के वातायन, नटराज पब्लिशिंग हाउस, होली मोहल्ला, करनाल, संस्करण, 1983।

श्री रामधारी सिंह दिनकर : काव्य की भूमिका, उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना- 4, प्र० सं० 1958

– चक्रवाल, उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना–4 प्रथम संस्करण।

– च्शुद्ध कविता की खोज, उदयाचल, राजेन्द्रनगर, पटना-4, प्रथम संस्करण, सितम्बर, 1966।

आ० रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, आठवाँ संस्करण।

डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना, द्वितीय खण्ड, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- 6, प्र० संस्करण।

डॉ० रामचंद्र प्रसाद : आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1 द्वारा प्रकाशित, प्र० सं०, 1973

डॉ० राजकिशोर कक्कड़ : आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास, एस० चंद्र एण्ड कम्पनी, रामनगर, नयी दिल्ली-4, 14 नवम्बर, 69

डॉ० रामचंद्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1968

डॉ० रामदरश मिश्र : हिन्दी समीक्षा स्वरूप और संदर्भ एमको प्रिन्टर्स, दिल्ली- 32, प्रथम संस्करण, 1974

डॉ० रांगेय राघव : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, प्र० सं०, 1961

डॉ० रघुवंश : साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, 1963

डॉ० राजेन्द्र मिश्र : आधुनिक हिन्दी काव्य : ग्रन्थम, कानपुर, फरवरी, 1966

डॉ० राम अवध द्विवेदी : अंग्रेजी भाषा और साहित्य, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर-प्रदेश,

प्र० सं०, 1960

डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा : पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, 1960

डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, त्रयोदश भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 3 नवम्बर, 1989

डॉ० वेंकट शर्मा : आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र० सं०, 1962

डॉ० विनय मोहन शर्मा : साहित्यान्वेषण, साहित्य सदन, देहरादून, प्रथम संस्करण, 1969

विश्वम्भर मानव : आधुनिक कवि, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1, द्वि० परिवर्तित सं०, 1965

नयी कविता : नये कवि, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गान्धी मार्ग, इलाहाबाद-1, 1 जनवरी, 1968

डॉ० शिवकरण सिंह : स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

डॉ० शिवकुमार शाण्डिल्य : सर्जनात्मक गद्यभाषा और काव्य भाषा, मंगला प्रकाशन नई दिल्ली-22, 1998

डॉ०श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, इण्डियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, तेरहवीं आवृत्ति, सं०, 2016

डॉ० शिवदान सिंह चौहान : आलो चना के सिद्धान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1960
साहित्यानुशीलन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6 1955

डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

डॉ० संतोषकुमार तिवारी : छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, भारतीय ग्रन्थ निकेतन- 133, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-110006

समीक्षा ठाकुर : संकलन-संपादन-कहना न होगा : एक दशक की बातचीत, नामवर सिंह के साथ, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं०, 1994

श्री सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, आठवाँ सं० 1967

– आधुनिक कवि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सातवाँ संस्करण।

सुलेख शर्मा : काव्य-शिल्प के आयाम, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली- 7, प्र० सं० 1971

डॉ० सुरेशचंद्र गुप्त : आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली- 6, प्र० सं० 1960

सिद्धेश्वर प्रसाद : छायावादोत्तर काव्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, उसका उद्‌भव और विकास, उत्तरचंद एण्ड सन्स, देहली, 1955

डॉ० हौसिलाप्रसाद सिंह : प्रगतिशील हिन्दी आलोचना की रचना-प्रक्रिया, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-1 प्र० सं०

डॉ० हरिश्चंद्र वर्मा : कवि तरुण का काव्य-संसार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र० सं० 1994

डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता की स्वच्छन्द धारा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1, द्वि० सं०

पत्र-पत्रिकाएँ

अवन्तिका : काव्यालोचनांक, जनवरी, 1954, नवम्बर, 1956, अप्रैल, 1956

आलोचना : जनवरी, 1953, दिसम्बर, 1970 , मार्च, 1971, दिसम्बर, 1966, अप्रैल-जून, 1973।

ज्योत्स्ना, पटना, नवम्बर, 1985, अगस्त, 1987, जुलाई, 1988, अप्रैल, 1991

नई धारा, पटना, जून, 1970, फरवरी, मार्च, 1989

नागरी पत्रिका, अगस्त-दिसम्बर, 1975, मार्च-अप्रैल, 1975, जून-जुलाई, 1975 निरन्तर, वर्ष 1, अंक 15-16

संभावना, शोध-तंत्र विशेषांक, वर्ष 3, अंक 5-6

सन्मार्ग, दैनिक पत्र, कलकत्ता, 22 अगस्त, 1976

प्रकर, दिल्ली, 8 जून, 1988

पूर्वग्रह, 34, सितम्बर-अक्टूबर, 1979

युगसाक्षी, लखनऊ, वर्ष 8 अंक 3, जुलाई-सितम्बर, 1994

सरस्वती, जून, 1921

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 10 मार्च, 1968, 10 फरवरी, 1974

धर्मयुग, 6 अगस्त, 1967, 13 अगस्त, 1967

ज्ञानपीठ पत्रिका जून, 1969

श्री देवराहा बाबा दिव्य आलोक : देवराहा दिव्य प्रकाशन, श्री देवरहा बाबा समाधि स्थल दिव्य मचान (वृन्दावन), गुरुपूर्णिमा, 1995

ENGLISH BOOKS

1. Aesthetics and Poetics : **Yuri Bara Bash**, Moscow, 1977

2. A History of Modern Criticism (The Romantic Age) : **Rene Wellec**, London, 1961

3. Biographi'a Literaria : **S. T. Coleridge**, London, 1948

4. Concept of Criticism : **Rene Wellec**, Yale University Press, London, 1965

5. Lyrical Ballads : **Ed. R. L. Brettons, A. R. Jones**, 1963, The Edition of 1798, & 1800

6. Romantic Image : **Frank Kermode, Kegan Paul**, London, 1957

7. Romanticism Reconsidered : **Edited by Northrop frye**,.Columbia University, Press, U.S.A., 1963

8. Romanticism in Perspective : **Lilan, R. Furst, Macmillan,** London, New York, 1969

9. Romance and Realism : A Study in English Bourgeois Literature, **By-Chirostopher Caudwell,**

10. The Romantic Imagination : **C. M. Bowra**, Oxford University, Press, London, 1961.

11. The Mirror and the Lamp : **M. H. Abrams**, Oxford University, press, London, 1953

12. Imagination : **E. J. Furlong George,** Allen & Unwin, N.Y. 1961

ENGLISH JOURNALS AND MAGAZINES

Studies in Romanticism : Editor W.H. Stevenson

Volume 12 No. 1 Winter, 1973

Volume 12 No. 2 Spring, 1973

Volume 12 No. 3 Summer, 1973

Volume 12 No. 4 Fall, 1973

Volume 17 No. 4 Fall, 1978

Volume 17 No. 3 Summer, 1978

Volume 19 No. 1 Spring, 1980

Volume 21 No. 4 Winter, 1982

The Twentieth Century Literature : Volume-24, Summer, No. 2, 1978

देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि